65

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक

[भूमिका व टिप्पणी सहित]

सत्य हरिश्चन्द्र नाटक

[भूमिका व टिप्पणी सहित]

लेखक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

टीकाकार

डा० श्यामसुन्दरलाल दीक्षित

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा-२
बिक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा-३

संस्करण : १९७५
मूल्य : २.५०

कम्पोजिंग : पुष्पा प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२
मुद्रक : कैलाश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा-२
[१२३]

भूमिका

(१) वंश-परिचय

वैश्य-अग्र-कुल में प्रगट; बालकृष्ण कुलपाल ।
ता सुत गिरधर-चरन-रत, वर गिरधारी लाल ।।
अमीचन्द तिनके तनय; फतेचन्द ता नन्द ।
हरषचन्द तिनके भए, निजकुल-सागर-चन्द ।।
श्री गिरधर गुरु सोइ के घर सेवा पधराय ।
तारे निज कुल जीव सब, हरि-पद-भक्ति दृढ़ाय ।।
तिनके सुत गोपाल ससि, प्रगटित गिरधरदास ।
कठिन करम-गति मेटि जिन, कीनो भक्ति-प्रकास ।।
मेटि देव देवी सकल, छोड़ि कठिन कुल-रीति ।
थाप्यो गृह में प्रेम जिन, प्रगटि कृष्ण-पद प्रीति ।।
पारवती की कोख सों, तिन सों प्रगट अमंद ।
गोकुलचन्द्रागज भयो, भक्त-दास हरिचन्द ।।

इस प्रकार स्वयं भारतेन्दु जी ने अपने वंश का परिचय दिया है। आपका जन्म भाद्रपद शुक्ला सप्तमी संवत् १९०७ को बनारस में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू गोपालचन्द्र था, जो कविता में अपना नाम गिरधरदास रखते थे। भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द जी इनके पूर्व-पुरुष थे।

पाँच वर्ष की अवस्था में ही माता का देहान्त हो गया और लगभग दस वर्ष की अवस्था में पिता का स्वर्गवास हो गया।

भारतेन्दु जी के दो पुत्र और एक कन्या थी। दोनों पुत्र बाल्यकाल में ही गोलोकवासी हो गये थे।

(२) विद्याध्ययन, विवाह, पर्यटन

सात वर्ष की अवस्था में ही आपने एक दोहा लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया, वह दोहा यह है—

लै ब्यौड़ा ठाड़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को हनन लगे भगवान॥

इसे सुनकर पिता ने कहा तू मेरा नाम उज्ज्वल करेगा और सचमुच ही भारतेन्दु जी ने कुल का नाम उजागर कर दिया।

पिता के स्वर्गवास के पश्चात्, अर्थात् दस वर्ष की आयु में ही आप विपुल-सम्पत्ति के अधिकारी हो गये और ग्यारह वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते विद्याध्ययन समाप्त हो गया। आपने धन का सदुपयोग और दुरुपयोग खूब ही किया। आपका कहना था कि इस धन ने मेरे पूर्व-पुरुषों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा।

आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। आप जन्म से ही कवि थे। हिन्दी, अँगरेजी, संस्कृत, बँगला आदि विभिन्न भाषाओं का आपको अच्छा ज्ञान था।

आपका विवाह बाल्य-काल में ही हो गया और आपने पन्द्रह वर्ष की अवस्था में सकुटुम्ब श्रीजगन्नाथपुरी की यात्रा भी की। इसी बीच में आपको बंगला और उसके नाटकों से परिचय हुआ, जिसके कारण आप बहुत प्रभावित हुए।

(३) देश-सेवा और स्वदेश-प्रेम

भारतेन्दु की प्रवृत्ति में, नस-नस में देश-प्रेम भरा हुआ था। भारत की दीनदशा पर आपने नाटक लिखे, कविताएँ बनाई और बड़ा भारी आन्दोलन भी किया। सच पूछा जाय तो, साहित्य में राष्ट्र-प्रेम और स्वदेश-प्रेम की धारा प्रवाहित करने वाले पहले व्यक्ति थे बाबू हरिश्चन्द्र जी। आप कई बार सरकार के कोप-भाजन भी बने; यहाँ तक कि आप जो 'कवि वचन सुधा' पत्रिका निकालते थे और सरकार पहले जिसकी कई-सौ प्रतियाँ खरीदती थी, पीछे आपको राजद्रोही मानकर पत्रिका की प्रतियाँ लेना बन्द कर दिया गया। परन्तु आपने अपने ध्येय को नहीं छोड़ा। आप बड़े स्वाभिमानी और देश-सेवक थे, जैसा कि आपके इस दोहे से प्रकट होता है—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार।।

आपने कवि-समाज की स्थापना की और उसे आर्थिक सहायता भी दी। दानी भी आप बड़े थे। एक-एक समस्यापूर्त्ति पर सौ-सौ रुपया दे डालना तो साधारण बात थी।

(४) साहित्यिकता

भारतेन्दु जी के गुरु थे राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द, जो पहले हिन्दी के प्रबल समर्थक थे परन्तु पीछे से 'सरकारी दबाव' के कारण उर्दू के समर्थक हो गये थे। भारतेन्दु जी की इनसे इसी कारण नहीं पटी। वे अपने गुरु के भी विरोधी हो गये और इसका कारण एक मात्र हिन्दी ही थी। सरकार ने राजासाहब को राजा और सितारेहिन्द की पदवी दी तो जनता ने 'ताल कटोरा' नामक स्थान पर सभा करके बाबू हरिश्चन्द्र को 'भारतेन्दु' की उपाधि से विभूषित किया और तब से अब तक वे 'भारतेन्दु' के नाम से ही विख्यात हैं। वे सचमुच ही भारतीय आकाश के इन्दु थे।

भारतेन्दु जी ने नाटक, उपन्यास, लेख, कविता आदि सभी दिशाओं में अनवरत उद्योग किया। आपने आस-पास लेखकों का समाज एकत्रित किया। स्वयं लिखा और दूसरों को प्रोत्साहन देकर लिखाया। आज हमें जिस हिन्दी का दर्शन हो रहा है, वह भारतेन्दु जी की ही देन है। आपने तदीय समाज की स्थापना भी की। चौखम्भा स्कूल नाम से एक स्कूल की स्थापना भी की, जो आज हरिश्चन्द्र इन्टर कालेज के नाम से वर्तमान है। आपने कविवचन-सुधा, हरिश्चन्द्र मैगजीन, बाला बोधिनी और हरिश्चन्द कला आदि पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं। केवल पैंतीस वर्ष की अल्पआयु में आपने बड़े-बड़े सुधार भी किये और १७५ ग्रन्थों की रचना भी की।

आप स्वतन्त्रता-प्रिय व्यक्ति थे, तभी आपने सामाजिक विरोध का सामना करते हुए भी अपनी सुपुत्री को स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा। आप नारी-स्वतन्त्रता के बड़े पक्षपाती थे परन्तु नारी को विलासिता की मूर्ति के रूप में न देख कर वास्तविक भारतीय नारी के स्वरूप में देखने के उत्सुक थे।

(५) मृत्यु

क्षय (तपेदिक) रोग से ग्रस्त होकर संवत् १९४१ में आपका शरीरान्त हो गया।

(६) स्वभाव

आप नवीन और पुरातन के समन्वयकार थे। धार्मिक विचार पुराने होते हुए भी नवीनता से आपको विशेष प्रेम था। उदाहरण के लिए आप नारियों में वैसी ही सचेष्टता और सजगता तथा वीरता देखना चाहते थे जैसी अंगरेजों में होती है, साथ ही वे उनको तितली बनी हुई नहीं देख सकते थे। 'नील देवी' इस विषय में उनके आदर्शों की प्रतिमूर्ति है। स्वयं हरिश्चन्द्रजी ने अपने स्वभाव का वर्णन इस रूप में किया है—

सेवक गुनी जन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुन गामी के।
सीधेनु सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
'हरीचन्द' नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह नेही,
नेह के दिवाने सदा सूरत निभानी के।
सरबस रसिक के, दासदास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के॥

(७) शैली

जहाँ तक भारतेन्दुजी की शैली का प्रश्न है, उनके गद्य में स्वाभाविकता है और उन्होंने कहीं भी भाषा को तोड़-मरोड़ कर अपने अनुकूल बनाने की चेष्टा नहीं की है। हिन्दी पर फारसी प्रभाव यथासम्भव नहीं पड़ने दिया है। रचना-शैली सरल और सीधी है।

कहीं-कहीं जहाँ गम्भीर भावों की अभिव्यंजना मिलती है वहीं उनकी भाषा-शैली कुछ कड़ी जान पड़ती है और कहीं-कहीं बनारसी शब्दों का भी प्रयोग पाया जाता है। उनकी शैली में बनावट नहीं है, इसीलिए वह सहज में अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। फिर भारतेन्दुजी की प्रतिभा सर्वतो-मुखी थी। उन्होंने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति की है। पहले-पहल तो ब्रजभाषा में रचना की परन्तु पीछे यह भी सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली में भी सफलतापूर्वक कविता लिखी जा सकती है। इस प्रकार वे हिन्दी गद्य और खड़ी बोली में काव्य, दोनों के जन्मदाता माने जाते हैं।

(८) नाटककार

हिन्दी के साहित्य में आप ही पहले नाटककार हैं। यों तो आपसे पहले आपके पिताजी का लिखा हुआ नहुष नाटक तथा राजा लक्ष्मणसिंह आदि के नाटक पाये जाते हैं परन्तु जिस व्यवस्थित ढंग से भारतेन्दुजी ने नाटक लिखे और आगे बढ़ाये, वह ढंग किसी में नहीं था। आपने प्रायः अठारह नाटक लिखे। इनमें से भारत दुर्दशा और नीलदेवी राजनैतिक हैं। मुद्राराक्षस कूटनीतिपूर्ण बड़ा ही सफल अनुवाद है जो मूल से भी बढ़कर आनन्द प्रदान करता है। 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में हास्यरस का समावेश है जिसमें शराबी तथा मांसाहारियों की खिल्ली उड़ाई गई है। 'अन्धेर नगरी' भी हास्यरस प्रधान है। शेक्सपियर के 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का अनुवाद 'दुर्लभ वन्धु' के नाम से किया है जिसमें हमें भारतीयकरण के दर्शन होते हैं, बाबू साहब ने पोर्शिया को पुर श्री नाम दिया है और इसी प्रकार स्थान आदि के नामों का परिवर्तन करके उसे समग्ररूपेण भारतीय बना दिया है। धनंजय विजय, कर्पूर मंजरी, विद्यासुन्दर आदि और भी कई सुन्दर नाटकों की रचना की है। सत्य हरिश्चन्द्र आपके समस्त नाटकों में उत्तम माना जाता है। सबसे गौरव की बात तो यह है कि आपके जीवन में ही आपके नाटक सफलतापूर्वक रंगमंच पर खेले गये।

(९) साहित्यिक विभाग

भारतेन्दु के समस्त साहित्य को हम छह भागों में बाँट सकते हैं। पहले भाग में नाटक-नाटिकाएँ आते हैं। दूसरे भाग में इतिहासों का संग्रह है, जिसमें कई महापुरुषों के जीवन-चरित भी हैं। तीसरे भाग में कविताओं का संग्रह रखा जा सकता है। चौथे भाग में 'भक्ति-सर्वस्व' अठारह ग्रन्थ हैं। पाँचवें भाग का नाम काव्यामृत प्रवाह है तथा छठें भाग में भारतेन्दुजी के संगृहीत तथा लिखे हुए चुटकुले और निवन्ध हैं।

भारतेन्दुजी का आदर, उनके जीवनकाल में समस्त भारत में हुआ परन्तु काशी-नरेश तथा उदयपुर के महाराणा आपका आदर विशेष रूप से करते थे।

(१०) साहित्य-सेवा

जब लोग हिन्दी की चिन्दी उड़ाने में व्यस्त थे और उनको राजा शिवप्रसाद जैसे व्यक्ति 'उर्दू-ए-मुअल्ला' के लिखने वाले मिल चुके थे, तब

भारतेन्दु जी ने अकेले ही हिन्दी का पक्ष लिया। वे युग-प्रवर्त्तक थे, उन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। हिन्दी को नया प्राण, नया जीवन देने वाले थे भारतेन्दु।

जब बाबू साहब ने लिखना आरम्भ किया तब हिन्दी में कोई निर्धारित शैली नहीं थी, अतएव आपने हिन्दी को एक ढंग में ढाला, उसकी एक शैली बनाई। यद्यपि उन्होंने केवल सत्तरह वर्ष ही हिन्दी की सेवा की—फिर भी उन्होंने ऐसा प्रकाश दिया जो अक्षय है।

वे एक सच्चे समालोचक भी थे। ग्रियर्सन महोदय की सम्मति में वे उत्तर भारत के पहले समालोचक थे। आपकी आलोचनाएँ हास्यपूर्ण तथा व्यंग्यात्मक होती थीं। व्यापक विचारों के साथ आपकी दृष्टि बड़ी पैनी थी।

कवियों में भी आपका स्थान बहुत ऊँचा था। नये विषयों का समावेश सबसे पहले आपने काव्य में किया। कहा जाता है आपके कविता गुरु का नाम पंडित लोकनाथ था। आपने खड़ी बोली में भी कविता लिखी, यद्यपि आप सदैव ही ब्रजभाषा के माधुर्य्य पर मुग्ध रहे। चन्द्रावली नाटक में भक्ति और प्रेम सम्बन्धी कविताओं का अच्छा विकास हुआ है।

ललिता का यह पद वास्तव में बहुत ही सुन्दर है—

हम भेद न जानि हैं जो पै कछू
औ दुराव सखी हम पै परि है।
कहि कौन मिलै हैं पियारे पियै,
पुनि कारज कासों सबै सरि है॥
बिन मोसों कहै न उपाव कछू
यह वेदन दूसरी को हरि है।
नहीं रोगी बताई है रोगहि जौं
सखी बापुरो बैर कहा करि है॥

फिर चन्द्रावली कहती है—

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भये पराये हरि सों जब सों जाय जुरे।
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे॥

मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे।
जग खीभयो वरज्यो पै ये नहिं हठ सों तनिक मुरे॥

आपकी कविताओं में व्यापकता और भावुकता—दोनों के ही दर्शन समान रूप से होते हैं। वे पहले कवि थे जिन्होंने खड़ी बोली में कविता लिख कर यह सिद्ध किया कि खड़ी बोली भी कविता की भाषा हो सकती है।

(११) नाटक

हिन्दी में गद्य साहित्य का निर्माण काफी देर से हुआ और यही कारण है कि नाटक साहित्य की उन्नति में काफी विलम्ब हो गया। वैसे भी हिन्दी में नाटक नहीं के बराबर ही थे। जो थे भी वे संस्कृत से प्रभावित थे अथवा उसी भाषा के अनुकरण पर थे। वस्तुतः जो नाटक उपलब्ध थे भी उनको नाटक कहना ठीक नहीं। उनमें, अधिकांश में, काव्य की ही प्रधानता थी। इसके अतिरिक्त रास, नौटंकी या अन्य तमाशों के रूप में नाटकीय व्यवस्था वर्तमान थी।

भारतेन्दु से पूर्व देवकवि का माषा-प्रपंच नाटक, नेवाज का शकुन्तला, हृदयराम का हनुमन्नाटक, भारतेन्दु के पिता का नहुष नाटक और राजा लक्ष्मणसिंह का शकुन्तला नाटक, व्रजवासीदास का प्रबोध चन्द्रोदय नाटक उपस्थित थे—परन्तु इनमें से अधिकांश नाटक, नाटक कहे जाने योग्य नहीं थे। कारण इनमें भारतीय सिद्धान्तों के अनुसार नाटकीय तत्त्वों का अभाव था। इसके अतिरिक्त मौलिक नाटकों की तो बहुत ही कमी थी। सबसे महत्त्व की बात तो यह थी कि उस समय तक न तो पारसी कम्पनियों का जन्म हुआ था और न हिन्दी का कोई नाटकीय रंगमंच ही था, अतएव भारतेन्दु को सभी दशाओं में काम करना पड़ा।

पहले के नाटकों में प्रभावती और आनन्द रघुनन्दन आदि गिने चुने नाटक ही ऐसे थे जिनको नाटक के दृष्टिकोण से नाटक कहा जा सकता था।

अतएव भारतेन्दु बाबू नाटकों के जन्मदाता कहे जाते हैं—जो सर्वांशतः ठीक ही है।

(१२) सत्य हरिश्चद्र नाटक की कथा

यह कथा अति प्राचीन है। सूर्यवंश में राजा हरिश्चन्द्र नामक अत्यन्त प्रतापी राजा हुए। उन्होंने सत्य के कारण दुःख सहे, परन्तु अपने स्वाभिमान

की रक्षा की, उसी का इस नाटक में सविस्तार वर्णन है। इनके सत्य-पालन की ऐसी धूम मची कि इन्द्र को भी चिन्ता हो गई कि कहीं मेरा सिंहासन न छिन जाय, अतएव उसने परमक्रोधी ऋषि विश्वामित्र से इस शंका को कहा। अकारण ही क्रोधी मुनि ने इन्द्र को सहायता करने का वचन दिया। इधर राजा ने स्वप्न में अपना राज्य एक मुनि को दे दिया था अतः वे अज्ञातनामा मुनि के प्रतिनिधि बन कर राज्य का संचालन कर रहे थे, तभी विश्वामित्र जा पहुँचे और उन्होंने अपना राज्य माँगा। हरिश्चन्द्र ने बड़े गर्व के साथ दान दिया, परन्तु जब दक्षिणा देने की बात आई तो पता चला कि कोष तो मुनि का हो गया। तब राजा हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी शैव्या और पुत्र रोहिताश्व को लेकर काशी में, अपने आपको बेचने के लिये आये। रानी को एक ब्राह्मण ने मोल ले लिया, रोहिताश्व शैव्या के साथ गया। राजा को भंगियों ने खरीद लिया और इस प्रकार एक सहस्र स्वर्ण-मुद्रा देकर राजा ने अपने वचन का पालन किया।

श्मशान पर कफन माँगने का काम राजा हरिश्चन्द करने लगे। इधर पुष्प-चयन के लिए जाने वाले रोहिताश्व को सर्प ने काट खाया और वह मर गया। रानी शैव्या उसे लेकर मरघट पहुँची। उसके विलाप से राजा को पता चल गया कि उसी का पुत्र रोहिताश्व मरा है। परन्तु फिर भी उसने धर्म पालन करते हुए आधा कफन माँगा। रानी ज्योंही अपने वस्त्र का आधा भाग फाड़कर देने लगी त्योंही पृथ्वी हिल उठी और साक्षात् भगवान् ने प्रकट होकर हरिश्चन्द को साधुवाद दिया। रोहिताश्व जी उठा और विश्वामित्रादिक सभी ने राजा की प्रशंसा की और उनका राज्य उन्हें वापिस मिल गया।

(१३) नाटक का आधार

संस्कृत साहित्य में हरिश्चन्द की कथा यत्र-तत्र मिलती है। दो नाटक भी हैं। एक है 'सत्य 'हरिश्चन्द नाटक' और दूसरा है 'चण्ड कौशिक'। प्रथम के लेखक हैं 'प्रवन्ध शतक' के रचयिता श्रीरामचन्द और दूसरे के आर्य क्षेमेश्वर। ऐसा जान पड़ता है कि भारतेन्दुजी ने दोनों से ही सहायता ली है। परन्तु भारतेन्दुजी का सत्य हरिश्चन्द्र इन दोनों में से किसी का भी पूर्ण अनुवाद नहीं है। कथावस्तु ग्रहण करने के पश्चात् उसे अपने ढंग से प्रस्तुत करना भारतेन्दुजी की मौलिकता है।

(१४) विशेष

यथासम्भव संक्षेप में, हमने सब कुछ देने का प्रयत्न किया है। परन्तु इतने महान् व्यक्ति के सम्बन्ध में इतना थोड़ा लिखने से हमारा सन्तोष नहीं होता। फिर भी 'नाम राम से बड़ा है' ऐसा ही जानकर हमने यह सब लिख दिया है।

चरित्र-चित्रण

(१) हरिश्चन्द्र

नाटकों में नायक चार प्रकार के माने जाते हैं—

१—धीरोदात्त (जैसे महाराज युधिष्ठिर)

२—धीर ललित (जैसे महाराज दुष्यन्त)

३—धीर प्रशान्त (जैसे भगवान् बुद्ध)

४—धीरोद्धत (जैसे मेघनाद)

इस नाटक में, नायक हरिश्चन्द्र हैं जो धीरोदात्त हैं। ऐसे नायक में सत्य, सदाचारिता, दानशीलता सभी गुण होते हैं, सो हरिश्चन्द में हैं। वे दानी हैं—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्री हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार॥

वे सत्यवादी भी हैं—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हूं मंद।
रखि है निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचंद॥

वे स्वप्न के दान को भी सत्य मानते हैं। इसी कारण नारदादि देवता लोग उनका गुण-गान करते हैं। उनके सत्य के कारण ही इन्द्र भी डरता है। वे दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। दक्षिणा चुकाने के लिए वे पत्नी तो क्या, अपने आप तक को बेच देते हैं। सत्यवादी और कर्त्तव्यनिष्ठ ऐसे हैं कि पुत्र के शरीर पर से भी कफन नहीं छोड़ते।

परन्तु उनके पास पिता का हृदय भी है। बटुक द्वारा पुत्र रोहिताश्व को खींचे जाने पर उनका मन भर आता है। यों वे अकारण क्रोधी विश्वामित्र को भी प्रत्येक क्षण क्षमा करते रहते हैं।

वे वर्ण, धर्म और आश्रम का पालन करने वाले हैं। ब्राह्मण कैसा भी हो, उनकी सम्मति में पूज्य है। इसी नाते वे विश्वामित्र की सब जली-कटी बातें सुन लेते हैं।

उनमें विनय है, सहनशीलता है और कर्त्तव्य करने में वे पीछे नहीं हटते। परन्तु उनमें स्वाभिमान की कमी भी नहीं है। उनका यह कहना है कि महाराज मैं ब्रह्मदण्ड से इतना नहीं डरता जितना सत्य दण्ड से, कोरी कल्पना नहीं थी। सत्य-पालन के कारण ही महाविद्याएँ उनके पास आईं और उन्होंने कहा—"महाराज हरिश्चन्द्र! बधाई है! हमीं लोगों को सिद्ध करने का विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था। तब देवताओं ने माया से आपको स्वप्न में हमारा रोना सुना कर हमारा प्राण बचाया" परन्तु उनसे भी राजा ने यही कहा कि "तुम जाओ विश्वामित्र को ही सिद्ध हो।" ऐसा त्यागी राजा, जिसने महाविद्याओं की रक्षा की, क्या अपनी पत्नी और पुत्र की रक्षा नहीं कर सकता था? परन्तु नहीं, उसने अपना सब कुछ सत्य के लिए निछावर कर दिया। तभी तो विश्वामित्र जैसे व्यक्ति ने उनको 'महानुभाव' कह कर पुकारा।

घर वालों का मोह तो बड़े-बड़ों को व्यथित करता है। शैव्या के बिक जाने के पश्चात् रोहिताश्व का तोतली वाणी में प्रश्न करना और फिर सबका बिछुड़ना अत्यन्त ही कारुणिक है, परन्तु राजा उस समय भी धैर्य रखते हैं और रानी से अपना धर्म-पालन करने का आदेश-उपदेश देते हैं। यही उनकी महानता है। बालक को घसीटने वाले ब्राह्मण पर भी क्रुद्ध न हो कर उससे बच्चे को क्षमा कर देने की प्रार्थना करने वाले महाराज हरिश्चन्द आर्य जाति के भूषण ही कहे जा सकते हैं। उनकी क्षमा बलवान की क्षमा है, क्योंकि समर्थ होते हुए भी वे सबको क्षमा करते हैं।

उनकी सबसे बड़ी और भीषण परीक्षा होती है श्मशान में, वे डोम के दास हैं। कफन माँगना उनका काम है। पृथ्वी ही उनकी शय्या है।

रोहिताश्व का शव लेकर रानी आती है। वे उसे पहचान नहीं पाते। पीछे जान लेते हैं। पत्नी असहायावस्था में है। उसके पास कुछ भी नहीं जिससे वह टैक्स (श्मशान का कर) चुका सके। प्रातः होने वाला है। आस-पास कोई भी नहीं है। फिर भी हृदय को कठोर बनाकर राजा हरिश्चन्द्र

रानी से आधा कफन माँगते हैं। प्रेम और कर्त्तव्य में संघर्ष होता है। परन्तु कर्त्तव्य विजयी होता है। रानी ज्यों ही अपना वस्त्र फाड़ कर देना चाहती है, स्वयं भगवान् का सिंहासन हिल उठता है। वे अवतीर्ण होते हैं और हरिश्चन्द्र इस परीक्षा में भी उत्तीर्ण हो जाते हैं। वे सचमुच ही सत्यवीर हैं। अन्त तक भी अपने सत्य और कर्त्तव्य को राजा हरिश्चन्द नहीं छोड़ते हैं। बड़ी से बड़ी विपत्ति पड़ जाने पर भी वे अपने सत्य-पथ से नीचे नहीं हटते।

इतने ही नहीं, वे परोपकारी भी हैं और जब भगवान् से वरदान माँगते हैं तो यही कि मेरे साथ मेरी प्रजा भी वैकुण्ठ में वास करे। स्वयं तरे और दूसरों को भी उबारे यही तो महानता है। उनका चरित्र स्वयं ही आदर्श है। हरिश्चन्द का चरित्र भारतीय इतिहास का अनमोल रत्न है।

(२) शैव्या

पत्नी का चरित्र पति के अनुकूल ही है। उनमें कुल-वधू के समस्त गुण उपस्थित थे। वे सुन्दरी पतिव्रता थीं। पति के दुख से दुखी और सुख से सुखी। रमणी का कोमल हृदय पाकर भी वे पति के चरण-चिह्नों पर चलने वाली थीं। 'धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपति काल परखिये चारी।' तुलसीदास जी ने ऐसा कहा है। वे भारतीय नारी की प्रतिमूर्त्ति थीं। आर्य हरिश्चन्द जी ने कष्ट उठाया तो उन्होंने भी कुछ कम कष्ट नहीं सहा। राजा अपने वचन से बँध हुए थे तो वे राजा के साथ बँधी हुई थीं। स्वप्न में ब्राह्मण को राज्य देने वाली बात पर तो उन्होंने विवाद किया, क्योंकि वे स्वप्न की महत्ता को असत्य मानती थीं परन्तु पति से पहले दासी बनने में कोई झिझक नहीं दिखाई। क्योंकि वह प्रत्यक्ष आपत्ति के समय आगे आकर कहती हैं—"तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूंगी, स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, इससे पहले बाँया अङ्ग बेच लो तब दाँया बेचो।" यह उसी सती नारी के अनुकूल कथन था। स्वप्न को सत्य न मानना भी पति हित के लिए था तो पति के लिए दासी बनना भी पति-हित के हेतु था। वे सदैव पति-रता थीं। धर्म और सत्य पालन के समय वे पीछे नहीं रहीं। स्वाभिमान की कमी रानी में भी नहीं है, उच्छिष्ट भोजन और पर पुरुष सम्भाषण न करने की शर्त पर ही वे दासी हुईं। रोहिताश्व की मृत्यु की वेदना वे अकेली ही सहन करती हैं और सुकुमारी, राजदुलारी होते हुए भी

पुत्र के शव को स्वयं अपने हाथों उठाकर श्मशान ले जाती हैं। उनका विलाप, जैसा कि भारतेन्दु जी ने चित्रित किया है बड़ा ही करुणोत्पादक है। कुछ लोगों का कहना है कि शैव्या का संवाद नाटक में लम्बा हो जाता है। ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि अत्यन्त दुखी व्यक्ति के पास विलाप और प्रलाप के अतिरिक्त शेष रह ही क्या जाता है।

श्मशान में राजा हरिश्चन्द को पहचान कर वे जैसा करुणा से पूरित वार्तालाप करती हैं उससे उनके हृदय की भावना, कोमलता और मातृत्व का परिचय मिलता है।

शैव्या सचमुच ही एक आदर्श पात्र हैं और भारतेन्दु के हाथों से जो उनका चित्रण हुआ है इसी से उसमें और भी शोभा आ गई है।

(३) विश्वामित्र

सन्धि विच्छेद करने से होगा विश्व+अमित्र अर्थात् जो विश्वभर का शत्रु है। मुनि का यथा नाम तथा गुण है। वे अकारण ही क्रोधी हैं और प्रचण्ड क्रोधी। ब्रह्मा से रुष्ट होकर सृष्टि बना डालने को प्रस्तुत हैं। इन्द्र की चापलूसी से प्रसन्न होकर हरिश्चन्द को सत्य-भ्रष्ट करने की कमर कस लेते हैं। उन्होंने हरिश्चन्द से स्वप्न में, छल से राज माँग लिया। कितने ही कटु वाक्य कह कर राज्य माँगा और दक्षिणा देने के सम्बन्ध में बहुत कुछ खरी-खोटी भी सुनाई। वे समय-असमय राजा हरिश्चन्द को बुरा-भला कहने में नहीं चूकते हैं। ज्यों-ज्यों राजा प्रार्थना करता है त्यों-त्यों विश्वामित्र का क्रोध बढ़ता चला जाता है। 'जे बिनु काज दाहिने बाँयें' वाली बात विश्वामित्र के विषय में बिल्कुल ठीक बैठती है। उनमें उदारता के स्थान पर अनुदारता ही विशेष रूप से उपस्थित है। नाटककार उनके चित्रण में अत्यन्त सफल है, श्रोता अथवा दर्शक को सहज में विश्वामित्र के प्रति घृणा और राजा के प्रति सहानुभूति हो जाती है।

कहीं-कहीं विश्वामित्र का चरित्र निखरा भी है। जब राजा हरिश्चन्द्र कहते हैं कि दक्षिणा के बदले में आप मुझे ही अपना दास बना लें तो, वे कहते हैं, 'स्वयं दासास्तपस्विः' तपस्वी तो स्वयं दास हैं। ऐसा कह कर वे अपनी हीनता भी दिखाते हैं और कठोरता भी। वे अपने स्वार्थ के लिए शास्त्र की शरण लेने में भी नहीं हिचकते हैं।

परन्तु अन्त में जब विश्वामित्र स्वयं राजा की प्रशंसा करते हैं और प्रगट करते हैं कि यह सब अभिनय केवल राजा हरिश्चन्द्र की परीक्षा के लिए किया है तो श्रोता या दर्शक की कटुता विश्वामित्र के प्रति कम हो जाती है और वे उसे विधाता के हाथ की कठपुतली मात्र ही जान पड़ते हैं, जो किसी अज्ञात प्रेरणा से इस कठोर कार्य को सम्पादित करते रहे। इस प्रकार विश्वामित्र के चरित्र को दूषित दिखाते हुए भी अन्त में उनकी महत्ता निश्चित कर देना, नाटककार की सबसे बड़ी सफलता है।

(४) रोहिताश्व

बालक है, अबूझ और अबोध। माता-पिता के साथ-साथ जहाँ वे जाते हैं चला जाता है। माता शैव्या के बेचे जाने के समय की उसकी बातें बड़ी करुणोत्पादक हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उसकी मोह से भरी तोतली-वाणी को सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपनी प्रतिज्ञा से विमुख न हो जायँ। एक प्रकार से देखा जाय तो रोहिताश्व इस नाटक का केन्द्र-बिन्दु है। विधान के अनुसार मर कर भी वह माता-पिता की परीक्षा का कारण होता है और उनकी महान् सफलता का हेतु भी। बालक का बड़ा ही सफल चित्रण इस नाटक में हुआ है।

(५) इन्द्र

भारतीय वाङ्मय में, इन्द के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह जब किसी को उग्र-तप या अन्य कोई पुण्य-कार्य करते देखता है तो उसे अपने सिंहासन की चिन्ता होने लगती है। इस नाटक में भी उसे यही चिन्ता है। यहाँ वह प्रतिनायक के रूप में आता है। वह विश्वामित्र के कँधे पर रख कर बन्दूक चलाता है, वह एक सफल कूटनीतिज्ञ है। नारद जी के विश्वास दिलाने पर भी उसे अपने सिंहासन छिन जाने का भय है। वह ईर्ष्यालु है और उसी ईर्ष्या-भाव से प्रेरित होकर वह विश्वामित्र की चापलूसी करता है और उनको अकारण ही हरिश्चन्द्र के प्रति उभाड़ देता है। "भला सत्य धर्म पालन करना क्या हँसी खेल है? यह तो आप जैसे महात्माओं का ही काम है जिन्होंने घर बार छोड़ दिया।" इन्द्र बड़ा ही चतुर और वाक्-पटु व्यक्ति है। अन्त में जब राजा की विजय होती है तो इन्द्र उनकी स्तुति करता है और स्वयं कहता है कि यह सब माया राजा के गौरव की अभिवृद्धि के लिए रची गई

थी। वह यहाँ भी बड़प्पन दिखाने से पीछे नहीं रहता। इन्द्र में सबसे बड़ा गुण यही है कि वह अपनी कमजोरी को जानता है और अवसर से लाभ उठाना जानता है। धर्म भ्रष्ट करने को वह हरिश्चन्द्र के प्रति पूरा-पूरा षड्यन्त्र करता है परन्तु जब इन्द्र पराजित होता है तो वह उसी राजा की प्रशंसा करने में भी नहीं चूकता है।

शेष पात्रों में, जो छोटे-छोटे हैं, कोई महत्त्वपूर्ण पात्र नहीं, जिसका वर्णन करना आवश्यक हो।

नाटक की आलोचना

ऐसा जान पड़ता है और कुछ विद्वान् लेखकों की ऐसी मान्यता भी है कि भारतेन्दु ने अपने सत्य हरिश्चन्द्र की रचना संस्कृत नाटकों के आधार पर की है। इसके अतिरिक्त अपने नाटक में उन्होंने प्राचीन परिपाटी का निर्वाह भी किया है। उदाहरण के लिए नान्दी, सूत्रधार, नट और नटी आदि का प्रयोग तथा मध्य में यवनिका शब्द का उपयोग, यह बताता है कि उन्होंने अपने नाटक के लिए संस्कृत नाटकों को आधार माना है। यद्यपि वे इस दिशा में थोड़ा-बहुत मौलिक भी हो गये हैं, क्योंकि संस्कृत नाटकों में जहाँ सूत्रधार नान्दी पाठ करता है, इस नाटक में उन्होंने किसी से भी मंगल-पाठ करा दिया है। संस्कृत नाटकों की भाँति इसमें भी 'प्रस्तावना' है।

इस नाटक में दानवीरता, धर्म-वीरता और सत्यवीरता का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। करुणा-रस प्रधान है, कथा का वर्णन जिस रूप से किया है, वह दर्शकों के मन में करुणा की नदी बहा देती है। राजा हरिश्चन्द्र की सहनशीलता, विश्वामित्र का क्रोध रोहिताश्व की बाल सुलभ बातें और शैव्या का करुणोत्पादक चरित्र तथा विलाप सभी कुछ अनूठे और आदरणीय तथा प्रशंसनीय हैं। राजा क्षणमात्र में डोम का दास बन जाता है और रानी शैव्या दूसरे ही पल में ब्राह्मण की दासी हो जाती है तथा बेचारा बालक रोहिताश्व बिना बिके हुए ही बिक जाता है। यह सभी बातें भाग्य-चक्र की परिवर्तनशीलता का प्रदर्शन करती हैं। श्मशान का जैसा उपयुक्त वर्णन है, उसके कारण संसार का अनित्य स्वरूप हमारे सामने आ जाता है। भूतप्रेतादिक का वर्णन हमारे कौतूहल को बढ़ाता है।

नाटक में दो एक दोष भी बताये जाते हैं। पहला तो यह कि राजा

हरिश्चन्द्र के सामने गंगा जी अवतरित नहीं हुई थीं, वे तो उनकी कई पीढ़ी पश्चात् महात्मा भागीरथ द्वारा लाई गई थीं, अतएव गंगा का वर्णन अस्वाभाविक, अनैतिहासिक तथा व्यर्थ जान पड़ता है। बात वैसे तो सही है परन्तु हरिश्चन्द्र के युग में काशी के आस पास किसी नदी को हम मानलें, चाहें वह फिर गंगा न होकर 'कर्मनाशा' ही हो तो क्या आपत्ति है? यदि ऐसा ही मान कर हम इस गहराई में न जायँ और नदी-वर्णन को साहित्यिक महत्त्व तक ही सीमित रखें तो सब मामला सुलझ जायगा। जो भी हो, यह दोष ऐसा नहीं है जो क्षमा न किया जा सकता हो।

तीसरी बात है देवताओं की अवतारणा। लोग आपत्ति उठाते हैं कि देवताओं की अवतारणा से नाटक में से स्वाभाविकता जाती रहती है—परन्तु यह मत आज तो माननीय है भारतेन्दु युग में क्या स्थिति थी, ऐसा विचार किये बिना ही कोई निर्णय दे देना ठीक नहीं है। भारतेन्दु युग में लौकिक के अतिरिक्त अलौकिक बातों और घटनाओं पर भी विश्वास किया जाता है, अतएव उस समय के लिखे हुए नाटक को वर्तमान विचारधाराओं की कसौटी पर कसना ठीक नहीं है।

चौथी बात है शैव्या-विलाप के सम्बन्ध में। कुछ आलोचकों का कहना है कि उसका विलाप-विषयक संवाद असीमित है, बहुत लम्बा है, ऐसा नहीं होना चाहिए। केवल ऐसे आलोचकों की राय को आदर देने के लिए भले ही उसे मान लिया जाय वरन् इस आक्षेप का कोई मूल्य नहीं है। विपदा-ग्रस्त व्यक्ति 'बकझक' के सिवा और करेगा ही क्या? इसी प्रकार शैव्या का दुःख प्रकट करना अतिक्रमण नहीं है, वह तो उसके हृदयगत कोमल विचारों का अभिव्यक्तीकरण है। जिसे सुनकर किसी भी सहृदय का मानस करुणा से विभोर हो उठेगा।

हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र में जो मानवीय निर्बलताएँ हैं, उनका चित्रण बड़ा ही सफल हुआ है। बाबू साहब के नाटकों को, हमें उसी युग की दृष्टि से देखना होगा, तभी हम उसका मूल्य निर्धारित कर सकेंगे, अन्यथा झंझट में पड़ जाना सम्भव है।

शेष, विशेष और अशेष

आज का कलाकार मानता है कि नाटक में 'आप ही आप' 'स्वगत-कथन' आदि बिल्कुल ही न हों। कुछ लोग इसे युक्तियुक्त नहीं मानते। बात तो यही है कि पात्र जो कुछ कहे उसे समस्त मंडप में स्थित-दर्शक तो सुनें और पास ही खड़ा पात्र न सुन सके—यह बात ठीक नहीं मालूम होती। सत्य हरिश्चन्द्र में इसका उपयोग काफी हुआ है। परन्तु इसीलिए नाटक को स-दोष नहीं माना जा सकता है, क्योंकि उस युग में नाटकों का प्रारम्भ ही हुआ था, अतः कुछ दोष आ भी गये हों तो वे क्षम्य हैं।

पहले अंक से ही राजा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा प्रारम्भ हो जाती है और स्वर्गलोक तक पहुँच जाती है कि राजा बड़ा ही सत्यवादी है। स्वप्न में राज्य को दान कर देना फिर उसे सत्य मानकर अज्ञातनामा ब्राह्मण के नाम पर राज्य का संचालन करना बड़ा ही आदर्शोन्मुख तथा प्रशंसनीय है।

कुछ आलोचकों की राय में, स्वप्न में दान न देकर प्रत्यक्ष दिया जाता तो अधिक स्वाभाविकता रहती, परन्तु हमारी सम्मति इसके विपरीत है। स्वप्न को झूठा माना जाता है, परन्तु राजा ने उसे भी सत्य माना, यही उसकी सत्यवादिता है और इसी के कारण कथा में कौतूहल तथा सजीवता आ जाती है।

राजा ने जो दक्षिणा दी है उसके विषय में भी मतभेद है। कुछ लोग एक लाख मानते हैं। हरिश्चन्द्रजी ने एक हजार सोने की मुहरें निश्चित की हैं, जो बहुत ही उपयुक्त और राजा के सम्मान के अनुकूल भी जान पड़ती हैं।

गंगा का वर्णन बहुत ही स्वाभाविक तथा प्रिय है परन्तु काफी लम्बा होने से उबा देने वाला है।

वियोग-वर्णन में तो भारतेन्दु बाबू को कमाल हासिल है। जिन्होंने उनका 'चन्द्रावली' नाटक पढ़ा है, वे प्रत्यक्षतः इसे देख सकते हैं। शैव्या और हरिश्चन्द्र के संवाद, जो रोहिताश्व की मृत्यु के समय हुए हैं, शैव्य का विलाप, सभी कुछ अत्यन्त करुणोत्पादक हैं।

हाँ, नाटक में बाबू साहब की स्वरचित कविताएँ बहुत कम हैं। हो सकता है, आदर्श नाटक प्रस्तुत करने की धुन में तथा कविताओं की उपयुक्तता

के कारण भारतेन्दु ने उन कविताओं का प्रयोग कर लिया हो। जो भी कुछ हो, इतनी बात अवश्य है कि कविताएँ समयानुकूल और उपयुक्त हैं।

कुछ आलोचकों का कहना है कि नाटक में हास्यरस का अभाव है। करुण-रस प्रधान नाटक में हास्य का होना अच्छा नहीं लगता, अतएव इसका न होना कोई दोष नहीं है।

भाषा शैली पर कहीं-कहीं बनारसी तथा व्रजभाषा का प्रभाव दिखाई देता है, जो स्वाभाविक है। इसके लिए बाबूजी को दोष नहीं दिया जा सकता। भारतेन्दु-युग प्रचार का युग था, प्रसार का नहीं, अतएव उस युग में हिन्दी का प्रचार ही हुआ और वही अपेक्षित भी था। गद्य के लगभग सभी नमूनों में प्रान्तीयता की प्रधानता थी; यहाँ तक कि राजा लक्ष्मणसिंह के शकुन्तला नाटक में 'आगरा की बोली का पुट' पाया जाता है। फिर भी भारतेन्दु ने सामंजस्य उपस्थित करने की चेष्टा की। इसलिए उन्होंने ऐसी भाषा-शैली की सृष्टि की जिसमें तत्सम शब्दों का अभाव हो। बोलचाल में प्रयुक्त उर्दू शब्दों का प्रयोग भी किया। भारतेन्दु ने न तो राजा शिवप्रसाद की फारसी, अरबी प्रधान भाषा को अपना आदर्श माना और न राजा लक्ष्मण-सिंह की संस्कृत प्रधान भाषा को अपनाया—आपने जिस सामंजस्य को साथ लिया, उसके द्वारा लाला श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जैसे लेखकों ने प्रचुर मात्रा में साहित्य की सृष्टि की। भारतेन्दु की शैली कवि के पीछे-पीछे चलती थी। वे अपनी शैली को भावानुकूल परिवर्तित कर सकते थे।

वस्तुतः भारतेन्दु-युग हिन्दी साहित्य का स्वर्णिम और समुज्ज्वल युग है। जब तक हिन्दी रहेगी भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का नाम अमर रहेगा।

—श्यामसुन्दरलाल दीक्षित

उपक्रम

मेरे मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद, बी० ए०, ने मुझसे कहा कि आप कोई ऐसा नाटक भी लिखें जो लड़कों के पढ़ने-पढ़ाने के योग्य हो, क्योंकि शृङ्गार रस के आपने जो नाटक लिखे हैं वे बड़े लोगों के पढ़ने के हैं, लड़कों को उनसे कोई लाभ नहीं। उन्हीं की इच्छानुसार मैंने यह सत्य हरिश्चन्द नामक रूपक लिखा है। इसमें सूर्य्य-कुल-सम्भूत राजा हरिश्चन्द की कथा है। राजा हरिश्चन्द सूर्य्यवंश का अट्ठाईसवाँ राजा रामचन्द से ३५ पीढ़ी पहले त्रिशंकु का पुत्र था। इसने शौभपुर नामक एक नगर बसाया था और बड़ा ही दानी था। इसकी कथा शास्त्रों में वहुत प्रसिद्ध है और संस्कृत में राजा महिपालदेव के समय में आर्य्य क्षेमीश्वर कवि ने चण्डकौशिक नामक नाटक इन्हीं हरिश्चन्द के चरित्र में वनाया है। अनुमान होता है कि इस नाटक को बने चार सौ बरस से ऊपर हुए, क्योंकि विश्वनाथ कविराज ने अपने साहित्य-ग्रन्थ में इसका नाम लिखा है। कौशिक विश्वामित्र का नाम है। हरिश्चन्द और विश्वामित्र दोनों शब्द व्याकरण की रीति से स्वयं-सिद्ध हैं। विश्वामित्र कान्यकुब्ज का क्षत्रिय राजा था। यह एक वेर संयोग से वशिष्ठ के आश्रम में गया और जब वशिष्ठ ने सैन्य-समेत उसकी दावत अपनी शबला नाम की कामधेनु गऊ के प्रताप से बड़े धूमधाम से की तब विश्वामित्र ने वह कामधेनु लेनी चाही। जब हजारों हाथी, घोड़े और ऊँट के बदले भी वशिष्ठ ने गऊ न दी तो विश्वामित्र ने गऊ छीन लेनी चाही। वशिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने विश्वामित्र की सब सेना का नाश कर दिया और विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वशिष्ठ ने शाप से जला दिये। विश्वामित्र इस पराजय से उदास होकर तप करने और महादेव जी से वरदान में सब अस्त्र पाकर फिर वशिष्ठ से लड़ने आये। वशिष्ठ ने मन्त्र के बल से एक ऐसा ब्रह्म-दण्ड खड़ा कर दिया कि विश्वामित्र के सब अस्त्र निष्फल हुए। हार कर विश्वामित्र ने सोचा कि

अब तप करके ब्राह्मण होना चाहिए और तप करके अन्त में ब्राह्मण और ब्रह्मर्षि हो गये। यह वाल्मीकीय रामायण के बालकांड के ५२ से ६० सर्ग तक सविस्तृत वर्णित है।

जब हरिश्चन्द्र के पिता त्रिशंकु ने इसी शरीर से स्वर्ग जाने के हेतु वशिष्ठजी से कहा तब उन्होंने उत्तर दिया कि वह अशक्य काम हम से न होगा। तब त्रिशंकु वशिष्ठ के सौ पुत्रों के पास गया और जब उनसे भी कोरा जवाब पाया तब कहा कि तुम्हारे पिता और तुम लोगों ने हमारी इच्छा पूरी नहीं की और हमको कोरा जवाब दिया, इससे अब हम दूसरा पुरोहित करते हैं। वशिष्ठ के पुत्रों ने इस बात से रुष्ट होकर त्रिशंकु को शाप दिया कि तू चण्डाल हो जा। बेचारा त्रिशंकु चण्डाल बनकर विश्वामित्र के पास गया और दुःखी होकर अपना सब हाल वर्णन किया। विश्वामित्र ने अपने पुराने बैर का बदला लेने का अच्छा अवसर सोचकर राजा से प्रतिज्ञा की कि इसी देह से तुमको स्वर्ग भेजेंगे और सब मुनियों को बुलाकर यज्ञ करना चाहा। सब ऋषि तो आये, पर वशिष्ठ के सौ पुत्र नहीं आये और कहा कि जहाँ चण्डाल यजमान और क्षत्रिय पुरोहित वहाँ कौन जाय। क्रोधी विश्वामित्र ने इस बात से रुष्ट होकर शाप से वशिष्ठ के उन सौ पुत्रों को भस्म कर दिया। यह देखकर और बेचारे ऋषि मारे डर के यज्ञ करने लगे। जब मन्त्रों से बुलाने से देवता लोग यज्ञ में भाग लेने न आये तब विश्वामित्र ने क्रोध से श्रुवा उठाकर कहा कि त्रिशंकु! यज्ञ से कुछ काम नहीं, तुम हमारे तपोबल से, स्वर्ग जाओ। त्रिशंकु इतना कहते ही आकाश की ओर उड़ा। जब इन्द्र ने देखा कि त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग में आना चाहता है तब पुकारा कि अरे तू यहाँ आने के योग्य नहीं है, नीचे गिर। त्रिशंकु यह सुनते ही उलटा होकर नीचे गिरा और विश्वामित्र को त्राहि त्राहि पुकारा। विश्वामित्र ने तप-बल से उसको वहाँ बीच ही में स्थिर रखा। कर्म्मनाशा नामक नदी त्रिशंकु के ही लार से बनी है। फिर देवताओं पर क्रोध करके विश्वामित्र ने सृष्टि ही दूसरी करनी चाही। दक्षिण ध्रुव के समीप सप्तर्षि और नक्षत्र इन्होंने नये बनाये और बहुत से जीव-जन्तु फल मूल बनाकर जब इन्द्रादिक देवता भी दूसरे बनाने चाहे तब देवता लोग डर कर इनसे क्षमा माँगने गये। इन्होंने अपनी बनाई सृष्टि स्थिर रखकर और दक्षिणाकाश में त्रिशंकु को ग्रह की भाँति प्रकाशमान स्थिर रख क्षमा किया।

यह सब भी रामायण ही में है। फिर एक बेर पानी नहीं बरसा, इससे बड़ा काल पड़ा। विश्वामित्र एक चण्डाल के घर भीख माँगने गये और जब कुत्ते का मांस पाया तब उसी से देवताओं को बलि दिया। देवता लोग इनके भय से काँप गए और इन्द्र ने उस समय पानी बरसाया। यह प्रसंग महाभारत के शान्तिपर्व के १४१ अध्याय में है। फिर हरिश्चन्द्र की विपत्ति सुनकर क्रोध से वशिष्ठजी ने उनको शाप दिया कि तुम बकुला हो जाओ और विश्वामित्र ने यह सुन कर वशिष्ठ को शाप दिया कि तुम आड़ी[1] हो जाओ। पक्षी बनकर दोनों ने बड़ा घोर युद्ध किया, जिससे त्रैलोक्य काँप गया। अन्त में ब्रह्मा ने दोनों में मेल कराया। यह उपाख्यान मार्कण्डेय पुराण के नवें अध्याय में है। इनकी उत्पत्ति यों है—भृगु ने जब अपने पुत्र च्यवन ऋषि को ब्याह किये देखा तब प्रसन्न हुए और बेटा बहू देखने को उनके घर आये। उन दोनों ने पिता की पूजा की और हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। भृगु ने बहू से कहा कि बेटी, वर माँग। सत्यवती ने यह वर माँगा कि मुझे तो वेद-शास्त्र जानने वाला और मेरी माता को युद्ध-विद्या-विशारद पुत्र हो। भृगु ने एवमस्तु कहकर ध्यान दे प्राणयाम किया और उनके श्वास से दो चरु उत्पन्न हुए। भृगु ने वह बहू को देकर कहा कि यह लाल चरु तो तुम्हारी माता प्रति ऋतु समय में अश्वस्थ का आलिंगन करके खाय और तुम यह सफेद चरु उसी भाँति उदुम्बर का आलिंगन करके खाना। भृगु के वाक्यानुसार सत्यवती ने कन्नौज के राजा गाधि की स्त्री अपनी माता से सब कहा। उसकी माता ने यह समझ कर कि ऋषि ने अपनी पतोहू को अच्छा बालक होने को चरु दिया होगा, जब ऋतु-काल आया तब लाल चरु तो कन्या को खिलाया और सफेद आप खाया। भगवान् भृगु ने तपोबल से जब यह बात जानी तो आकर बहू से कहा कि तुमने चरु को उलट-पुलट किया इससे तुम्हारा लड़का ब्राह्मण होकर भी क्षत्रिय कर्म्मा होगा और तुम्हारा भाई क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मण हो जायगा। सत्यवती ने जब ससुर से इस अपराध की क्षमा चाही तब उन्होंने कहा कि अच्छा तुम्हारे पुत्र के बदले पौत्र क्षत्रियकर्म्मा होगा। वही राजा गाधि के तो विश्वामित्र हुए और च्यवन के जमदग्नि और जमदग्नि

---

१. किसी जाति का गिद्ध।

के परशुराम हुए। यह उपाख्यान कालिका पुराण के ८४ अध्याय में स्पष्ट है।

इन उपाख्यानों के जानने से इस नाटक के पढ़ने वाले को बड़ी सहायता मिलेगी इस भारतवर्ष में उत्पन्न और इन्हीं हम लोगों के पूर्व पुरुष महाराज हरिश्चन्द्र भी थे। यह समझ कर इस नाटक के पढ़ने वाले कुछ भी अपना चरित्र सुधारेंगे तो कवि का परिश्रम सुफल होगा।

विद्यार्थिनो हस्ताक्षरम्

राम मिलन पाठकः

पूर्व मध्यमा: प्रथम वर्षे

समर्पण

नाथ !

यह एक नया कौतुक देखो। तुम्हारे सत्य-पथ पर चलने वाले कितना कष्ट उठाते हैं। यही इसमें दिखाया है। भला हम क्या कहैं ? जो हरिश्चन्द ने किया वह तो अब कोई भी भारतवासी न करेगा, पर उस वंश ही के नाते इनको भी मानना। हमारी करतूत तो कुछ भी नहीं, पर तुम्हारी तो बहुत कुछ है। बस, इतना ही सही। लो सत्य-हरिश्चन्द्र तुम्हें समर्पित हैं, अङ्गीकार करो। छल मत समझना। सत्य का शब्द सार्थ है, कुछ पुस्तक के बहाने समर्पण नहीं है।

तुम्हारा—
हरिश्चन्द

सत्य-हरिश्चन्द्र

मङ्गलाचरण

दोहा

सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुख कन्द।
जनहित कमला तजन जय शिव नृप कवि हरिचन्द[1] ॥१॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार[2] आता है)

सूत्रधार—अहा ! आज की संध्या भी धन्य है कि इतने गुणज्ञ और रसिक लोग एकत्र हैं और सबकी इच्छा है कि हिन्दी-भाषा का कोई नवीन नाटक देखें। धन्य है विद्या का प्रकाश कि जहाँ के लोग नाटक किस चिड़िया का नाम है इतना भी नहीं जानते थे, भला वहाँ अब लोगों की इच्छा इधर प्रवृत्त तो हुई। परन्तु हा ! शोच की बात है कि जो बड़े-बड़े लोग हैं और जिनके किए कुछ हो सकता है वे ऐसी अन्ध-परम्परा में फँसे हैं और ऐसे बेपरवाह और अभिमानी हैं कि सच्चे गुणियों की कहीं पूछ ही नहीं है।

केवल उन्हीं की चाह और उन्हीं की बात है जिन्हें झूठी खैर-ख्वाही

---

१. यह श्लेष शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि पांच का वर्णन करता है।

२. सूत्रधार हरे व नीले रंग का साटन का कामदार जांघियाँ पहने उसके आगे पटुके की तरह कमरबन्द के दोनों किनारे नीचे ऊपर लटकते हुए, गले में चुस्त सामने बुताम की मिरजई, ऊपर माला वगैरह और सब गहने, सिर पर पिटारा, पैर में घुंघरू, हाथ में छड़ी, पाँव में पैजामा काछनी, सिर पर मुकुट।

दिखाने का लम्बा-चौड़ा गाल बजाना आता है। (कुछ सोचकर) क्या हुआ ढङ्ग पर चला जायगा तो यों भी बहुत हो रहेगा। काल बड़ा बली है धीरे-धीरे सब आप ही कर देगा। पर भला आज इन लोगों को लीला कौन सी दिखाऊँ (सोच कर) अच्छा उनसे भी पूछलें ? ऐसे कौतुकों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की बुद्धि विशेष लड़ती है (नेपथ्य की ओर देख कर) मोहन अपनी भाभी को जरा इधर तो भेजना।

(नेपथ्य में से मैं तो आप ही आती थी, कहती हुई नटी[1] आती है)

नटी—मैं तो आप आती थी। वह एक मनिहारिन आ गई थी, उसी के बखेड़े में लग गई, नहीं तो अब तक कभी की आ चुकी होती। कहिये, आज जो लीला करनी हो वह पहिले ही से जानी रहे तो मैं और सभी से कह के सावधान कर दूँ।

सूत्र०—आज का नाटक तो हमने तुम्हारी ही प्रसन्नता पर छोड़ दिया है।

न०—हम लोगों को तो सत्य हरिश्चन्द्र आज कल अच्छी तरह याद है और उसका खेल भी सब छोटे-बड़ों को मँज रहा है।

सू०—ठीक है, यही हो। भला इससे अच्छा और कौन नाटक होगा। एक तो इन लोगों ने उसे अभी देखा नहीं है, दूसरे आख्यान भी करुणा-पूर्ण राजा हरिश्चन्द्र का है, तीसरे उसका कवि भी हम लोगों का एक मात्र जीवन है।

न०—(लम्बी साँस लेकर) हा ! प्यारे हरिश्चन्द्र का संसार ने कुछ भी गुण रूप न समझा। क्या हुआ "कहेंगे सबै ही नैन नीर भरि-भरि पाछे प्यारे हरिश्चन्द की कहानी रहि जायगी।"

सू०—इसमें क्या सन्देह है। काशी के पण्डितों ही ने कहा है—

सब सज्जन के मान को, कारन इक हरिचन्द।
जिमि सुभाव दिन रैन के, कारन नित हरि,[2] चन्द[3] ॥२॥

---

१. महाराष्ट्री वेश, कमर पर पेटी कसे व मर्दाने कपड़े पहिने, पर जेवर सब जनाने।

२. हरि सूर्य।

३. विद्वज्जन प्रतिष्ठा कारणमे को हरिश्न्द्रः।
विद्वत् स्वभावगत्या नारात्र्योर्वा हरिश्चन्द्र ॥

और फिर उनके मित्र पण्डित शीतलाप्रसादजी ने इस नाटक के नायक से उनकी समता की है। इससे उनके बनाये नाटकों में भी सत्य हरिश्चन्द्र ही आज खेलने को जी चाहता है।

न०—कैसी समता, मैं भी सुनूं।

सू०—जो गुन नृप हरिचन्द में, जग हित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचन्द में, लखहु प्रतच्छ सुजान[1] ।।३।।

(नेपथ्य में)

अरे !

यहाँ सत्य भय एक के, कांपत सब सुर लोक।
यह दूजो हरिचन्द को, करन इन्द्र उर शोक ।।

सू०—(सुनकर नेपथ्य की ओर देखकर) यह देखो हम लोगों को बात करते देर न हुई कि मोहना इन्द्र बनकर आ पहुँचा, तो अब चलो हम लोग भी तैयार हों।

(दोनों जाते हैं)

इति प्रस्तावना

१. श्रूयन्ते ये हरिश्चन्द्रे जगदाह्लादिनो गुणाः।
दृश्यन्ते ते हरिश्चन्द्रे चन्द्रवत् प्रियदर्शने ।।

प्रथम अंक

यवनिका उठती है

(स्थान इन्द्रसभा, बीच में गद्दी तकिया धरा हुआ घर सजा हुआ)

(इन्द्र[1] आता है)

(इन्द्र "यहाँ सत्य भय एक के" यह दोहा फिर से पढ़ता हुआ इधर-उधर घूमता है)

(द्वारपाल[2] आता है)

द्वा०—महाराज ! नारदजी आते हैं।

इ०—आने दो, अच्छे अवसर पर आये।

द्वा०—जो आज्ञा। (जाता है)

इ०—(आप ही आप) नारदजी सारी पृथ्वी पर इधर-उधर फिरा करते हैं, इनसे सब बातों का पक्का पता लगेगा। हमने माना कि राजा हरिश्चन्द्र को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि उसके धर्म की एक बेर परीक्षा तो लेनी चाहिये।

(नारद[3] आते हैं)

इ०—(हाथ जोड़कर दण्डवत करता है।) आइये-आइये, धन्य भाग्य, आज किधर भूल पड़े ?

---

१. जामा, क्रीट, कुण्डल और गहने पहने हुए हाथ में वज्र (कई फूल छोटी माला) लिये हुए।

२, छज्जेदार पगड़ी, अचकन, घेरदार पाजामा पहने कमरबन्द कसे और हाथ में आसा लिये हुए।

३. धोती की लाँघ कसे, गाती बाँधे, सिर से पाँव तक चन्दन का खौर दिये, पैर में घुँघरू, सिर के बाल घुटे और हाथ में बीन लिए, आने और जाने के समय 'राम कृष्ण गोविन्द' की ध्वनि नेपथ्य में से हो।

ना०—हमें और भी कोई काम है ? केवल यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ; यही हमें है कि और भी कुछ ?

इ०—साधु स्वभाव ही परोपकारी होते हैं, विशेष करके आप ऐसे जो हमारे दीन गृहस्थों को घर बैठे दर्शन देते हैं। क्योंकि जो लोग गृहस्थ और काम काजी हैं वे स्वभाव ही से गृहस्थी के बन्धनों से ऐसे जकड़ जाते हैं कि साधु संगम तो उनको स्वप्न में भी दुर्लभ हो जाता है, न वे प्रबन्धों से छुट्टी पावेंगे न कहीं जायेंगे।

ना०—आपको इतना शिष्टाचार नहीं सुहाता। आप देवराज हैं और आपके संग की तो बड़े-बड़े ऋषि मुनि इच्छा करते हैं। फिर आपको सत्संग कौन दुर्लभ है ? केवल जैसा राजा लोगों में एक सहज मुँह देखा व्यापार होता है वैसी ही बातें आप इस समय कर रहे हैं।

इ०—हमको बड़ा सोच है कि आपने हमारी बातों को शिष्टाचार समझा। क्षमा कीजिए, आपसे हम बनावट नहीं करते। भला विराजिये तो सही, यह बातें तो होती ही रहेंगी।

ना०—विराजिये। (दोनों बैठते हैं)।

इ०—कहिये इस समय कहाँ से आना हुआ ?

ना०—अयोध्या से अहा ! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो उसके निष्कपट अकृत्रिम स्वभाव से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्यकुल में अनेक बड़े-बड़े धार्मिक हुए पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही हैं।

इ०—(आप ही आप) यह भी तो उसी का गुण गाते हैं।

ना०—महाराज ! सत्य की तो मानों हरिश्चन्द्र मूर्ति हैं। निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत-भूमि का सिर केवल इनके स्मरण से उस समय भी ऊँचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी।

इ०—(आप ही आप) अहा ! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाई है ! यद्यपि इसका स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो, तथापि दूसरों की उत्कट कीर्ति से इसमें ईर्षा होती है; उसमें भी जो जितने बड़े हैं उनकी ईर्षा ही उतनी बड़ी है। हमारे ऐसे पदाधिकारियों को शत्रु इतना सन्ताप नहीं देते जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति।

ना०—आप क्या सोच रहे हैं ?

इ०—कुछ नहीं यों ही, मैं यह सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्ति आजकल छोटे-बड़े सबके मुँह सुनाई पड़ती है, इससे निश्चय होता है कि नहीं हरिश्चन्द्र निस्सन्देह ही बड़ा मनुष्य है।

ना०—क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है जिसे छोटे-बड़े सब मानें और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा जो ऐसा होकर धर्म साधन करेगा। (आप ही आप) और उसकी बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उससे बुरा मानते हैं, क्योंकि जिससे बड़े-बड़े लोग डाह करें, पर उसका कुछ बिगाड़ न सकें, वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है।

इ०—भला ! उसके गृह चरित्र कैसे हैं ?

ना—दूसरों के लिए उदाहरण बनाने योग्य। भला पहले जिसने अपने निज के और अपने घर के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये हैं, उसकी और बातों पर क्यों विश्वास हो सकता है ? शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है। वचन से उपदेशक और क्रियादिक से कैसे भी धर्मनिष्ठ क्यों न हों, पर यदि उसके चरित्र शुद्ध नहीं हैं तो लोगों में वह टकसाल न समझा जायगा और उसकी बातें प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उनके मन, वचन और कर्म एक रहते हैं, इनके भिन्न-भिन्न। निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय हैं। उसके आशय बहुत उदार हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

इ०—भला ! आप उदार व महाशय किसको कहते हैं ?

ना०—जिसका भीतर बाहर एक-सा हो और विद्यानुरागिता, उपकारप्रियता आदि गुण जिसमें सहज हों, अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में अनभिमान और युग में जिसकी स्थिरता है, वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है। हरिश्चन्द्र में ये सब बातें सहज हैं। दान करके उसको प्रसन्नता होती है और कितना भी दे पर सन्तोष नहीं होता, यही समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया।

इ०—(आप ही आप) हृदय ! पत्थर के होकर तुम यह सब कान खोल के सुनो।

ना०—और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चल भक्ति उसमें ऐसी है जो सबका भूषण है, क्योंकि उसके बिना किसी की शोभा नहीं। फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य-प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि उन्हें राज-काज देखने की छुट्टी कब मिलती है। सच है, छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबरा जाते हैं, मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है; पर जो बड़े लोग हैं उनके सब काम महारम्भ होते हैं, तब भी उनके मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती, क्योंकि एक तो उनके उदार चित्त में धैर्य्य और अवकाश बहुत है, दूसरे उनका समय व्यर्थ नहीं जाता और ऐसा यथा योग्य बटा रहता है जिससे उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं।

इ० —भला महाराज ! यह ऐसे दानी हैं, तो उनकी लक्ष्मी कैसे स्थिर है ?

ना०—यही तो हम कहते हैं। निस्सन्देह वह राजा कुल का कलंक है जिसने बिना पात्र बिचारे दान देते-देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया। आप कुछ उपार्जन किया ही नहीं, जो था वह नाश हो गया और जहाँ प्रबन्घ है वहाँ धन की क्या कमी है। मनुष्य कितना धन देगा और याचक कितना लेंगे ?

इ० —पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर माँगे या ऐसी वस्तु माँगे जिससे दाता की सर्वस्व हानि होती हो तो वह दे कि नहीं ?

ना०—क्यों नहीं ! अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिए। जिसको धन पाकर, सत्पात्र में उसके त्याग की शक्ति नहीं है, वह उदार कहाँ हुआ ?

इ० —(आप ही आप) भला देखेंगे न।

ना०—राजन् ! दानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु ही नहीं है। वे तो अपने सहज स्वभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बँधे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उनको स्वर्ण का पर्वत भी तिल सा दिखाई देता है और उसमें भी हरिश्चन्द्र—जिसका सत्य पर ऐसा स्नेह है जैसा भूमि, कोष, रानी और तलवार पर भी नहीं है। जो सत्यानुरागी ही नहीं है, भला उससे न्याय कब होगा ? और जिसमें न्याय नहीं है, वह राजा ही काहे का है ? कैसी भी

विपत्ति और संकट पड़े और कैसा ही हानि लाभ हो, पर जो न्याय न छोड़े, वही धीर और वही राजा और उस न्याय का मूल सत्य है।

इ०—तो भला वह जिसे जो देने को कहेगा देगा वा जो करने को कहेगा करेगा।

ना०—क्या आप उसका परिहास करते हैं? किसी बड़े के विषय में ऐसी शंका ही उसकी निन्दा है। क्या आपने उसका यह सहज-सा अभिमान बचन नहीं सुना है?

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यौहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को टरै न सत्य विचार॥

इ०—(आप ही आप) तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होंगे, हमको भी अच्छा उपाय मिला। (प्रगट) हाँ! पर आप यह भी जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है।

ना०—वाह! भला जो ऐसे हैं उनके आगे स्वर्ग क्या वस्तु है? क्या बड़े लोग धर्म स्वर्ग पाने को करते हैं? जो अपने निर्मल चरित्र से सन्तुष्ट हैं उनके आगे स्वर्ग कौन वस्तु? फिर भला जिनके शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं वे क्या यश वा स्वर्ग के लालच से धर्म करते हैं? वे तो आपके स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं और जिन लोगों को भगवान् के चरणारविन्द में भक्ति है क्या किसी कामना से धर्माचरण करते हैं? यह भी तो एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना।

इ०—(आप ही आप) हमने माना कि उनको स्वर्ग की इच्छा न हो, तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो जायगा।

ना०—और जिनको अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आत्म सन्तोष मिलता है उनके उस असीम आनन्द के आगे आपके स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महातुच्छ है! क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभ कृत्य का बदला चाहते हैं?

इ०—तथापि एक बार उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता।

ना०—राजन्! आपको यह सब सोचना बहुत अयोग्य है। ईश्वर ने आपको बड़ा किया है, तो आपको दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर सन्तोष

करना चाहिए। ईर्षा करना तो क्षुद्राशयों का काम है। महाशय वही है जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझे।

इ०—(आप ही आप) इनसे काम न होगा (बात बहलाकर प्रगट) नहीं-नहीं! मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उनके गुणों को अपनी आँखों से देखता, भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े लेना चाहता हूँ, जिससे उन्हें कुछ कष्ट हो।

ना०—(आप ही आप) अहा बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता। बड़ा वही है जिसका चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है, पर जिसके चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं, वह आदर के योग्य नहीं है, परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है पर उसका चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराज! विश्वामित्रजी आये हैं।

इ०—(आप ही आप) हाँ, इनसे यह काम होगा। अच्छे अवसर पर आये। जैसे काम हो वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहिए। (प्रगट) हाँ हाँ, लिवा लाओ।

द्वा०—जो आज्ञा। (जाता है)

(विश्वामित्रजी[1] आते हैं)

इ०—(प्रणामादि शिष्टाचार करके) आइये भगवन् विराजिये।

(विश्वामित्र नारदजी को प्रणाम करके और इन्द्र को आशीर्वाद देकर बैठते हैं।)

ना०—तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक काम को जाना है।

वि०—यह क्या? हमारे आते ही आप चले, भला ऐसी रुष्टता किस काम की?

ना०—हरे-हरे! आप ऐसे सोचते हैं। राम-राम, भला आपके आने से हम क्यों जायेंगे? मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आ गये।

---

१. मृगचर्म. दाढ़ी, जटा, हाथों में पवित्री और कमण्डल, खड़ाऊँ पर चढ़े।

इ०—(हँस कर) आपकी जो इच्छा।

ना०—(आप ही आप) हमारी इच्छा क्या—अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायँ; क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्रजी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजियेगा तो हम उसके बाधक क्यों हों? पर इतना निश्चय रहे कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं, उतनी ही उनकी सत्य कीर्ति तपाये सोने की भाँति और भी चमकती है, क्योंकि विपत्ति के बिना सत्य की परीक्षा नहीं होती (प्रगट) यद्यपि 'जो इच्छा' आपने सहज भाव से कहा है तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन बचन नहीं कहते, क्योंकि इन वाक्यों से रूखा-पन झलकता है। मैं कुछ इसका ध्यान नहीं करता, केवल मित्र भाव से कहता हूँ। लो, जाता हूँ और यही आशीर्वाद देकर जाता हूँ कि तुम किसी को कष्टदायक मत होओ, क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है।

इ०—(कुछ लज्जित होकर प्रणाम करता है)—

(नारदजी जाते हैं)

वि०—यह क्यों? आज नारद भगवान् ऐसी कटी जली क्यों सुनाते थे? क्या तुमने कुछ कहा?

इ०—नहीं तो, राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग चला था सो उन्होंने उसकी बड़ी स्तुति की और हमारा उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस परकीर्ति को सहन न कर सका, इसमें कुछ बात ही बात में ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गये।

वि०—तो हरिश्चन्द्र में कौन ऐसे गुण हैं?

(सहज ही भृकुटि चढ़ जाती हैं)

इ०—(ऋषि का भ्रूभङ्ग देखकर चित्त में सन्तोष करके उनका क्रोध चढ़ाता हुआ) महाराज! सिफारसी लोग चाहे जिसको बढ़ा दें चाहे घटा दें! भला सत्य-धर्म-पालन क्या हँसी-खेल है? यह आप ऐसे महात्माओं ही का काम है; जिन्होंने घर बार छोड़ दिया हैं। भला राज करके और घर में रह के मनुष्य क्या धर्म का हठ करेगा! और

फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ती। इन्हीं बातों से तो नारदजी बिना बात अप्रसन्न हुए।

वि०—मैं अभी देखता हू न। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और दानीपने का अभिमान करेगा!

(क्रोध पूर्वक उठकर वह चलना चाहते हैं कि परदा गिरता है)

इति प्रथम अङ्क

दूसरा अंक

स्थान—राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन

(रानी शैव्या[1] बैठी है और एक सहेली[2] बगल में खड़ी है।)

रानी—अरी ! आज मैंने ऐसे बुरे-बुरे सपने देखें हैं कि जब से सो के उठी हूँ कलेजा काँप रहा है। भगवान् कुशल करे।

सहेली—महाराज के पुण्य प्रताप से सब कुशल ही होगी, आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या सपना देखा है, मैं भी सुनूँ।

रा०—महाराज को तो मैंने सारे अंग में भस्म लगाए देखा है और अपने को बाल खोले, और (आँखों में आँसू भर कर) रोहिताश्व को देखा है कि उसे साँप काट गया है।

स०—राम ! राम ! भगवान सब कुशल करेगा। भगवान करे रोहिताश्व जुग-जुग जिए और जब तक गंगा यमुना में पानी है, आपका सुहाग अचल रहे। भला आपने इसकी शान्ति का भी कुछ उपाय किया है ?

रा०—हाँ, गुरुजी से तो सब समाचार, कहला भेजा है।

स०—हे भगवान् हमारे महाराज, महारानी, कुँवर सब कुशल से रहें, मैं आँचल पसार कर यह वरदान माँगती हूँ।

(ब्राह्मण आता है)

ब्र०—(आशीर्वाद देता है)

---

१. लहँगा, साड़ी, सब जनाना, गहना, बिन्दी, वेना इत्यादि।

२. साड़ी सादा सिंगार।

३. धोती, उपरना, सिर पर चुन्नी या सिर पर बाल, दाड़ी, हाथों में पवित्री, तिलक, खड़ाऊँ।

स्वस्त्यस्तु ते कुशलमस्तु चिरायुस्तु ।
गोबाजिहस्ति धनधान्य समृद्धिरस्तु ।
ऐश्वर्य्यमस्तु कुशलोस्तु रिपुक्षयोस्तु ।
सन्तानवृद्धि सहिता हरिभक्तिरस्तु ॥

रा०—(हाथ जोड़कर प्रणाम करती है)

ब्रा०—महाराज ! गुरुजी ने यह अभिमन्त्रित जल भेजा है । इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगा लें और फिर थोड़ा सा पान भी करलें, और यह रक्षाबन्धन भेजा है, इसे कुमार रोहिताश्व की दाहिनी भुजा पर बाँध दें, फिर इस जल से मैं मार्जन करूँगा ।

रा०—(नेत्र में जल लगाकर और कुछ मुँह फेरकर आचमन करके) मालती ! यह रक्षाबन्धन तू सम्हाल कर अपने पास रख, जब रोहिताश्व मिले उसके दाहिने हाथ पर बाँध दीजिए ।

स०—जो आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)

ब्रा०—तो अब आप सावधान हो जायँ, मैं मार्जन कर लूँ ।

रा०—(सावधान होकर) जो आज्ञा ।

ब्रा०—(दूर्वा से मार्जन करता है)

देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
गन्धर्वाः किन्नरा नागा रक्षां कुर्व्वन्तु ने सदा ॥
पितरो गुह्यका यक्षा देव्यो भूताश्च मातरः ।
सर्व्वे त्वामभिषिचन्तु रक्षां कुर्व्वन्तु न सदा ॥
भद्रमस्तु शिवंचास्तु महालक्ष्मीः प्रसीदतु ।
पतिपुत्र-युता साध्वी जीवत्वं शरदांशतम् ॥

(मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंककर)

वक्षाप रोगामशुभमं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु ।

(फिर रानी पर मार्जन करना)

यन्मङ्गलं शुभं सौभाग्य धन धान्यमारोग्यम्बहु—
पुत्रत्वं तत्सर्व्वमीश-प्रसादात् ब्राह्मणवचनात् त्वय्यस्तु ॥

रा०—(हाथ जोड़कर ब्राह्मण को दक्षिणा देती है)

महाराज, गुरूजी से मेरी ओर से विनती करके दण्डवत् कह दीजियेगा।

ब्रा०—जो आज्ञा (आशीर्वाद देकर जाता है)

रा०—आज महाराज अभी तक सभा में नहीं आये ?

स०—अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी।

(नेपथ्य में वैतालिक गाते हैं)

(राग भैरव)

प्रगटहु रवि कुल रवि निसि बीती प्रजा कमल गन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय तम उनमूले।।
नसे चोरी लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बन्दी सूत चिरंयन मिलि कर रोर मचायो।।
तुव जस शीतल पौन परसि चटकी गुलाब की कलियाँ।
अति सुखपाइ असीस देत सोइ करि अँगुरिन चटअलियाँ।।
भए धरम में थित सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे।
रिपु-जुवती मुख-कुमुद मन्द, जन चक्रवाक अनुरागे।।
अरघ सरिस उपहार लिये, नृप ठाड़े तिन कहँ तोखौ।
न्याय कृपा सों ऊँच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ।।

(नेपथ्य में से बाजे की धुनि सुन पड़ती है)

रा०—महाराज ठाकुरजी के मन्दिर से चले, देखो बाजों का शब्द सुनाई देता है और बन्दी लोग भी गाते हैं।

स०—आप कहती हैं चले ? वह देखिये आ पहुँचे कि चले ?

रा०—(घबराकर आदर के हेतु उठती है)

(परिकर[1] सहित महाराज हरिश्चन्द्र[2] आते हैं)

---

१. राजा के परिकर में प्रथम मन्त्री नीमा, पैजामा, कमरबन्ध, दुशाला, पगड़ी सिरपेच सजे। दो मुसाहिब साधारण सभ्यों के वेष में। एक निशान वाला सेवक के वेष में। निशान पर सूर्य के नीचे "सत्येनास्ति भयं क्वचित" लिखा हुआ। चार शस्त्रधारी अङ्गरक्षक। दो सेवक।

२. सफ़ेद वा केशरी जामा, पैजामा, कमरबन्ध, मरदाना सब गहना सिर पर क्रीट या पगड़ी, सिरपेच तुर्रा, हाथ में तलवार दुशाला या कोई चमकता वस्त्र ओढ़े।

(रानी प्रणाम करती है और सब लोग यथा स्थान बैठते हैं)

ह० —(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलिन क्यों हो रहा है ?

रा०—पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिनसे चित्त व्याकुल हो रहा है।

ह० —प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है, पर तुम तो वीर-कन्या, वीर-पत्नी और वीर-माता हो, तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

रा० —नाथ ! मोह से धीरज जाता रहता है।

ह० —तो गुरुजी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलाया।

रा० —महराज ! शान्ति तो गुरूजी ने करदी है।

ह० —तब क्या चिन्ता है ? शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रखो सब कल्याण होगा। सदा सर्वदा सहज मंगल साधन करते भी जो आपत्ति आ पड़े तो निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के सन्तोष करना चाहिए।

रा०—महाराज ! स्वप्न के शुभाशुभ का विचार कुछ महाराज ने ग्रन्थों में देखा है।

ह० —(रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ हमने भी देखा है। (चिन्ता पूर्वक स्मरण करके) हाँ, यह देखा है कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्यासाधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है और जब मैं स्त्री जानकर उनको बचाने गया हूँ तो वह मुझी से रुष्ट हो गया है और फिर जब बड़े विनय से मैंने उसे मनाया है तो उसने मुझसे मेरा सारा राज्य माँगा है, मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना सब राज्य दे दिया।

(इतना कह कर अत्यन्त व्याकुलता का नाट्य करता है)

रा० —नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों हो गये ?

ह० —मैं यह सोचता हूँ कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहाँ पाऊँगा और बिना उसकी थाती सौंपे भोजन कैसे करूँगा ?

रा० —नाथ ! क्या स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा ?

ह० —प्रिये ! हरिश्चन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी होकर तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं है। हां भला तुम ऐसी बात मुँह से निकालती हो ! स्वप्न किसने

देखा है ? मैंने न ? फिर क्या स्वप्न संसार अपने काल में असत्य है इसका कौन प्रमाण है ? और जो अब असत्य कहो तो मरने के पीछे तो यह संसार भी असत्य है, फिर उसमें परलोक के हेतु लोग धर्माचरण क्यों करते हैं ? दिया सो दिया ? क्या स्वप्न में, क्या प्रत्यक्ष ?

रा०—(हाथ जोड़कर) नाथ ! क्षमा कीजिए, स्त्री की बुद्धि ही कितनी !

ह०—(चिन्ता करके) पर अब मैं करूँगा क्या ? अच्छा ! प्रधान ! नगर में ड्योढ़ी पिटवा दो कि राज्य के सब लोग आज से इसे अज्ञात-नामगोत्र ब्राह्मण का समझें, उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भाँति उसकी थाती समझ के राज-कार्य करेगा और दो मुहर राजकाज के हेतु बनवा लो, एक पर "अज्ञातनाम गोत्र ब्राह्मण महाराज का सेवक हरिश्चन्द्र" और दूसरे पर "राजाधिराज अज्ञातनाम-गोत्र ब्राह्मण महाराज" खुदा रहे और आज से राजकाज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे। देश के राजाओं और बड़े-बड़े कार्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण को पृथ्वी दी है, इससे आज से उसका राज्य हरिश्चन्द्र मन्त्री की भाँति सँभालेगा।

(द्वारपाल आता है)

द्वा०—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण दरवाजे पर खड़ा है और व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है।

ह०—(घबड़ा कर) आदर पूर्वक ले आओ।

द्वा०—जो आज्ञा। (जाता है)

ह०—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात है।

(द्वारपाल के साथ विश्वामित्र[१] आते हैं)

ह०—(आदरपूर्वक आगे से लेकर और प्रणाम करके) महाराज ! पधारिये, यह आसन है।

वि०—बैठ चुके, बोल, अभी तैंने मुझे पहिचाना कि नहीं ?

---

१. जटा और दाढ़ी बढ़ाये, खड़ाऊ पहने, गले में मृगछाला बांधे धोती पर बाघ की मोटी करधनी, एक हाथ में कुश और कमण्डल।

ह० —(घवड़ा कर) महाराज ! पूर्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं ।

वि०—(क्रोध से) सच है रे क्षत्रियाधम ! तू काहे को पहिचानेगा, सच है रे सूर्यकुलकलङ्क ! तू क्यों पहिचानेगा ? धिक्कार है तेरे मिथ्या-धर्माभिमान को, ऐसे ही लोग पृथ्वी को अपने बोझ से दबाते हैं । अरे दुष्ट ! तू भूल गया; कल पृथ्वी किसको दान दी थी ? जानता नहीं कि मैं कौन हूँ ?

"जातिस्वयंग्रहणदुर्ललितैकविप्र
दृष्यद्वशिष्ठसुतकाननधूमकेतुम ।
सर्गान्तरोहणभीतजगत्कृतान्त ।
चाण्डालयाजिनमवैषि न कौशिकं माम् ।।"

ह० —(पैरों पर गिर कर बड़े विनय से) महाराज ! भला आपको त्रैलोक्य में ऐसा कौन है जो न जानेगा ?

"अन्नक्षयादिषु तथा विहितात्मवृत्ति,
राजप्रतिग्रहपराङ् मुखमानसं त्वम् ।
आड़ीबकप्रधनकम्पितजीवलोकं,
कस्तेजसां च तपसां च निधि न वेत्ति ।"

वि०—(क्रोध से) सच है रे पापी पाखण्ड मिथ्या दानवीर ! तू क्यों न मुझे 'राज-प्रतिग्रह-पराङ् मुख' कहेगा; क्योंकि तैंने तो कल सारी पृथ्वी मुझे दान में दी है, ठहर-ठहर देख, इस झूठ का कैसा फल भोगता है । हा ! इसे देखकर क्रोध से जैसे मेरी दाहिनी भुजा शाप देने को उठती है । वैसे ही जातिस्मरण के संस्कार से बाँई भुजा फिर से कृपाण ग्रहण करना चाहती है । (अत्यन्त क्रोध से लम्बी साँस लेकर और बाँह उठाकर) अरे ब्रह्मा ! सम्हाल अपनी सृष्टि को नहीं तो परम तेज पुञ्ज दीर्घतपोवर्द्धित मेरे इस असह्य क्रोध से आज सारा संसार नाश हो जायगा, अथवा संसार के नाश ही से क्या ? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन मैंने चूर्ण किया जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई, आज इस राजकुलांगार का अभिमान चूर्ण करूँगा जो मिथ्या अहंकार के बल से जगत में दानी प्रसिद्ध हो रहा है ।

ह० —(पैरों पर गिर कर) महाराज ! क्षमा कीजिये, मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था। सारी पृथ्वी आपकी, मैं आपका, भला ऐसी क्षुद्र बात मुँह से निकालते हैं ! (इषत क्रोध से) और आप बारम्बार मुझे झूठा न कहिये; सुनिये मेरी यह प्रतिज्ञा है—

"चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्योहार।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द को, टरै न सत्य विचार॥"

वि०—(क्रोध और अनादरपूर्वक हंसकर) हहहह ! सच है, सच है रे मूढ़ ! क्यों नहीं, आखिर सूर्य्यवंशी है तो दे हमारी पृथ्वी !

ह० —लीजिये इसमें विलम्ब क्या है, मैंने तो आपके आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़ दिया (पृथ्वी की ओर देखकर)।

जेहि पाली इक्ष्वाकु सो, अबलों रवि-कुल-राज।
ताहि देत हरिचन्द नृप, विश्वामित्रहि आज॥
बसुधे तुम बहु सुख कियो, मम पुरुषन की होय।
धरम बद्ध हरिचन्द को, छमहु सु परबस जोय॥

वि०—(आप ही आप) अच्छा अभिमान दिखाले, तो मेरा नाम विश्वामित्र, जो तुझको सत्य-भ्रष्ट करके छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका है ? (प्रकट) स्वस्ति, अब इस महादान की दक्षिणा कहाँ है ?

ह० —महाराज, जो आज्ञा हो वह दक्षिणा अभी आती है।

वि०—भला सहस्र स्वर्णमुद्रा से कम इतने बड़े दान की दक्षिणा क्या होगी ?

ह० —जो आज्ञा (मन्त्री से) मन्त्री ! हजार स्वर्ण मुद्रा अभी लाओ।

वि०—(क्रोध से) "मन्त्री ! स्वर्ण हजार मुद्रा अभी लाओ" मन्त्री कहाँ से लावेगा ? क्या अब खजाना तेरा है ? झूठा कहीं का ! देना नहीं तो मुँह से कहा क्यों ? चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा !

ह० —(हाथ जोड़कर विनय से) महाराज ठीक है। खजाना अब सब आपका है, मैं भूला क्षमा कीजिए। क्या हुआ खजाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है।

वि०—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझ पर कठिन ब्रह्म-दण्ड गिराऊँगा। देख, केवल एक मास की अवधि है।

ह०—महाराज ! ब्रह्मदण्ड से उतना नहीं डरता जितना सत्य दण्ड से।

इससे :—

बेचि देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द।
रखिहै निज बच सत्य करि अभिमानी हरिचन्द ॥

(आकाश से फूलों की वृष्टि और बाजे के साथ जयध्वनि होती है)

(जवनिका गिरती है)

इति दूसरा अंक।

तीसरे अंक में अंकावतार

स्थान—वाराणसी का बाहरी प्रान्त तालाब

(पाप[1] आता है)

पा०—(इधर उधर दौड़ता है और हाँफता हुआ।) मरे रे मरे! जले रे जले!! कहाँ जायँ, सारी पृथ्वी तो हरिश्चन्द्र के पुण्य से ऐसी पवित्र हो रही है कि कहीं हम ठहर ही नहीं सकते। सुना है राजा हरिश्चन्द्र काशी गये हैं, क्योंकि दक्षिणा के वास्ते विश्वामित्र ने कहा कि सारी पृथ्वी तो हमको तुमने दान दे दी है, इससे पृथ्वी में जितना धन है सब हमारा हो चुका और तुम पृथ्वी में कहीं भी अपने को बेचकर हम से उऋण नहीं हो सकते। यह बात जब हरिश्चन्द्र ने सुनी तो बहुत ही घबराये और सोच विचार कर कहा कि बहुत अच्छा महाराज हम काशी में अपना शरीर बेचेंगे, क्योंकि शास्त्रों में लिखा है कि काशी पृथ्वी के बाहर शिव के त्रिशूल पर है, यह सुनकर हम भी दौड़े कि चलो हम भी काशी चलें, क्योंकि जहाँ हरिश्चन्द्र का राज्य न होगा वहाँ हमारे प्राण बचेंगे, सो यहाँ और भी उत्पात हो रहा है। जहाँ देखो वहाँ स्नान, पूजा, तप, पाठ, दान, धर्म, होम इत्यादि में लोग ऐसे लग रहे हैं कि हमारी मानो जड़ ही खोद डालेंगे। रात-दिन शंख घण्टा की घनघोर ध्वनि के साथ वेद की ध्वनि मानो ललकार-ललकार के हमारे शत्रु, धर्म की जय मनाती है और हमारे ताप से कैसा भी मनुष्य क्यों न तपा हो भगवती भागीरथी के जलकण मिले वायु से उसका हृदय एक साथ ही शीतल हो जाता है। इसके उपरान्त शिशिशि........

---

१. काजल का रंग, लाल नेत्र, महाकुरूप, हाथ में नंगी तलवार लिए, नीला काछा काछे।

.......ध्वनि अलग मारे डालती है। हाय ! कहाँ जायँ क्या करें हमारी तो संसार से मानो जड़ ही कटी जाती है, भला और जगह तो कुछ हमारी चलती भी है, पर यहाँ तो मानो हमारा राज ही नहीं; कैसा भी बड़ा पापी क्यों न हो यहाँ आया कि गति भई !

(नेपथ्य में)

सच है "येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः"

पा०—अरे रे ! यह कौन महा भयङ्कर भेष, अङ्ग में भभूत पोते, एड़ी तक जटा लटकाए, लाल लाल आँख निकाले, साक्षात् काल की भाँति त्रिशूल घुमाता चला आता है। प्राण ! तुम्हें जो अपनी रक्षा करना हो तो भागो पाताल में, अब इस समय भूमण्डल में तुम्हारा ठिकाना लगना कठिन ही है।

(भागता हुआ जाता)

(भैरव[1] आते हैं)

भैं०—सच है 'येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः" देखो इतना बड़ा पुण्यशील राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी आत्मा और पुत्र बेचने को यहीं आया है। अहा ! धन्य है सत्य ! आज जब भगवान भूतनाथ राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तान्त भवानी से कहने लगे तो उनके तीनों नेत्र अश्रु से पूर्ण हो गये और रोमाञ्च होने से सब शरीर के भस्म-कण अलग-अलग हो गये। मुझको आज्ञा भी हुई है कि अलक्ष रूप से तुम सर्वदा राजा हरिश्चन्द्र की अङ्गरक्षा करना, इससे चलूं मैं भी वेष बदल कर भगवान् की आज्ञा-पालन में प्रवृत्त होऊँ।

(जाते हैं। जवनिका गिरती है)

तीसरे अङ्क में यह अङ्कावतार समाप्त हुआ।

---

१. महादेवजी का सा सिंगार, तीन नेत्र, नीला रङ्ग, एक हाथ में त्रिशूल, दूसरे में प्याला।

तीसरा अंक

स्थान—घाट, काशी के किनारे की सड़क

(महाराज हरिश्चन्द्र घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं)

ह०—देखो काशी में पहुँच गये। अहा ! धन्य है काशी ! भगवति वाराणसि ! तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। अहा ! काशी की कैसी अनुपम शोभा है।

"चारहु आश्रम वर्न बसैं मनि कञ्चन धाम अकास विभीसिका।
सोभा नहिं कहि जाय कछू विधि ने रची मानो पुरीन की नासिका॥
आपु बसैं गिरिधारन जू तट देवनदी बर वारि विलासिका।
पुन्य-प्रकासिका पाप-बिनासिका हीय-हुलासिका सोहति कासिका।"

"बसैं बिन्दुमाधव विसेसरादि देव सबै दरसन ही ते लागे जम मुख मसी है।
तीरथ अनादि पंचगंगा मनिकर्निकादि सात आवरण मध्य पुण्यरूप धसी है॥
गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत जाकी धार तोरे आसु कर्मरूपी रसी है।
ससी सम जसी असी वरना में बसी पाप खसी हेतु असी ऐसौ लसी वाराणसी है॥"

"रचित प्रभासी भासी अवलि मकानन की जिनके अकासी फबै रतन निकासी है।
फिरैं दास दासी विप्र गृही औ संन्यासी लसैं वर गुनरासी देवपुरी हू न जासी है॥
गिरिधरदास विश्व कीरति विलासी रमाहासी लौं उजासी जाकी लगत हुलासी है।
खासी परकासी पुनवांसी चंद्रिकासी जाके बासी अविनासी अघनासी ऐसी कासी है॥

देखा ! जैसा ईश्वर ने यह सुन्दर अँगूठी के नगीने सा नगर बनाया है वैसी ही नदी भी इसके लिये दी है। धन्य गंगे !

जम की सब त्रास विनास करी मुख ते निज नाम उचारन में।
सब पाप प्रतापहि दूर दरयौ तुम आपन आप निहारन में॥
अहो गङ्ग अनङ्ग के शत्रु करे बहु नेक जलै मुख डारन में।
गिरिधारन जू कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में॥४॥[1]

---

१. ये चारों कवित्त ग्रन्थकर्ता के पिता श्री बाबू गोपालचन्द्र के बनाये हैं, जो कविता में अपना नाम गिरधरदास या गिरिधारन रखते थे।

कुछ महातम ही पर नहीं, गङ्गाजी का जल भी ऐसा ही उत्तम और मनोहर है ! अहा !

नव उज्ज्वल जलधार, हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन मन विविध मनोरथ करत मिटावत ॥
सुभग स्वर्ग-सोपान-सरिस सब के मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरिपद नख-चन्द्रकान्त-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमण्डल-मण्डन भव-खण्डन सुर-सरवस ॥
शिव सिर मालतिमाल, भगीरथ नृपति पुन्य फल।
ऐरावत गज गिरि पति-हिम-नग-कण्ठहार कल ॥
सगर सुवन सठ सहस परस जल मात्र उधारण।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारण ॥
काशी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हू नहिं तजी, रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर-सम सोहत।
कहुँ छतरी, कहुँ मढ़ी, बढ़ी मन मोहत जोहत ॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घण्टा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत, कहूँ नारी नर गावत।
बेद पढ़त कहुँ द्विज, कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥
कहूँ सुन्दरी नहात बारि कर-जुगल उछारत।
जुग अंबुज मिल मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुन्दरि वदन करन अति ही छवि पावत।
बारिध नासे ससि कलङ्क मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहँ जात रहत तितही ठहराई।
गङ्गा छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥

(कुछ सोचकर) पर हा ! जो अपना जी दुखी होता है तो संसार सूना जान पड़ता है ।

"अशनं वसनं वासो येषां चैवाविधानतः ।
मगधेन समा काशी गङ्गाप्यंगारवाहिनी ।।"[१]

विश्वामित्र को पृथ्वी दान करके जितना चित्त प्रसन्न नहीं हुआ उतना अब बिना दक्षिणा दिये दुखी होता है । हा ! कैसे कष्ट की बात है, राज, पाट, धन, धाम सब छूटा, अब दक्षिणा कहाँ से देंगे । क्या करें हम सत्यधर्म कभी छोड़ेंगे नहीं और मुनि ऐसे क्रोधी हैं कि बिना दक्षिणा मिले शाप देने को तैयार होंगे और जो वह शाप न भी देंगे तो क्या ? हम ब्राह्मण का ऋण चुकाए बिना शरीर भी तो नहीं त्याग सकते । क्या करें ? कुबेर को जीतकर धन लावें ? पर कोई शस्त्र भी नहीं है, तो क्या किसी से माँग कर दें ? पर क्षत्रिय का तो धर्म नहीं किसी के आगे हाथ पसारे, फिर ऋण काढ़े ? पर देंगे कहाँ से ? हा ! देखो काशी में आकर लोग संसार के बन्धन से छूटते हैं, पर हमको यहाँ भी हाय-हाय मची है । हा ! पृथ्वी तू फट क्यों नहीं जाती कि मैं अपना कलङ्कित मुंह फिर किसी को न दिखाऊँ । (आतङ्क से) पर यह क्या ? सूर्यवंश में उत्पन्न होकर हमारे ये कर्म हैं कि ब्राह्मण का ऋण दिये बिना पृथ्वी में समा जाना सोचें । (कुछ-सोचकर) हमारी तो इस समय कुछ बुद्धि ही काम नहीं करती । क्या करें हमें तो संसार सूना देख पड़ता है । (चिन्ता करके एक साथ हर्ष से) वाह अभी तो स्त्री, पुत्र और हम तीन-तीन मनुष्य तैयार हैं । क्या हम लोगों के बिकने से सहस्र स्वर्णमुद्रा भी नहीं मिलेगी ? तब फिर किस बात का इतना सोच । न जाने बुद्धि इतनी देर तक कहाँ सोई थी, हमने तो पहिले ही विश्वामित्र से कहा था ।

बेचि देह दारा सुअन, होय दास हू मन्द ।
रखिहै निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द ।।

(नेपथ्य में) तो क्यों नहीं जल्दी अपने को वेचता ? क्या हमें और काम नहीं है कि तेरे पीछे दक्षिणा के वास्ते लगे फिरें ।

---

१. जिसका भोजन, वस्त्र और निवास ठीक-ठीक नहीं है उनको काशी भी मगध है और गङ्गा भी तपाने वाली ।

ह० —अरे मुनि तो आ पहुँचे । क्या हुआ, आज उनसे एक दो दिन की अवधि और लेंगे ।

(विश्वामित्र आते हैं)

वि०—(आप ही आप) हमारी विद्या सिद्ध हुई भी दुष्ट के कारण सब बहक गई । कुछ इन्द्र के कहने पर ही नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है, पर क्या करें उसके सत्य, धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता । यद्यपि यह राज्य भ्रष्ट हो चुका, पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न कर लूंगा तब तक मेरा सन्तोष न होगा । (आगे देखकर) अरे यही दुरात्मा (कुछ रुक कर) वा महात्मा हरिचन्द्र है । (प्रगट) क्यों रे ! आज महीने में कै दिन बाकी हैं ? बोल कब दक्षिणा देगा ?

ह० —(घबराकर) अहा ! महात्मा कौशिक ! भगवान् प्रणाम करता हूँ । (दण्डवत् करता है)

वि—हुई प्रणाम, बोल तूने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया ? आज महीना पूरा हुआ । अब मैं एक क्षण भी न मानूंगा दे अभी, नहीं तो—(शाप के वास्ते कमण्डल से जल हाथ में लेते हैं)

ह० —(पैरों पर गिर कर) भगवन् ! क्षमा कीजिये । यदि आज सूर्यास्त के पहिले न दूं तो जो चाहे कीजियेगा । मैं अभी अपने को बेच कर मुद्रा ले आता हूं ।

वि०—(आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) अच्छा आज सांझ तक और सही । शाम को न देगा तो मैं शाप ही न दूंगा, बरच त्रैलोक्य में आज ही विदित कर दूंगा कि हरिश्चन्द्र का सत्य भ्रष्ट हुआ । (जाते हैं)

ह०—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचे । अब चलें अपना शरीर बेच कर दक्षिणा देने का उपाय सोचें । हा ! ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है, इस लोक में वही मनुष्य कृतार्थ है जिसने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल-लाल आँखें नहीं देखी हैं । (आगे चलकर)

अरे क्या बाजार में आ गये, अच्छा, (सिर पर तृण रख कर[1]) अरे सुनो भाई सेठ साहूकार महाजन, दूकानदारों, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर में बेचते हैं, किसी को लेना हो तो लो (इसी तरह कहता हुआ इधर-उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्य विक्रय को अनुचित जान कर हम दूसरों को दण्ड देते थे पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। देव बली है। (अरे सुनो भाई इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है।) फिर ऊपर देखकर, क्या कहा, "क्यों तुम ऐसा दुष्कर कर्म करते हो ?" आर्य यह मत पूछो, यह सब कर्म गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो, और किस तरह रहोगे ?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे, समझते सब कुछ हैं; पर इस अवसर पर समझना कुछ काम नहीं आता और जैसे स्वामी रखेगा वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया तब इसका क्या विचार है (ऊपर देखकर) क्या कहा ? "कुछ दाम कम करो।" आर्य हम लोग तो क्षत्रिय हैं हम दो बाप कहाँ से जानें जो कुछ ठीक था कह दिया।

(नेपथ्य में से)

आर्यपुत्र ऐसे समय में हमको छोड़ जाते हो, तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन होके क्या करूँगी ? स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, इससे पहिले बायाँ अङ्ग बेच लो तब दाहिना अङ्ग बेचो।

ह० —(सुनकर बड़े शोक से) हाँ ! रानी की यह दशा इन आँखों से कैसे देखी जायगी ?

(सड़क पर शैव्या और बालक फिरते हुए दिखाई पड़ते हैं)

शै० —कोई महात्मा कृपा करके हमको मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बा०—अमको भी तोई मोल ले तो बला उपकाल हो।

शै० —(आँखों में आँसू भर कर) पुत्र ! चन्द्र-कुल भूषण महाराज वीरसेन का

---

१. उस काल में जब कोई दास्य स्वीकार करता था तो सिर पर तृण रखता था।

नाती और सूर्य-कुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू ऐसे क्यों कातर वचन कहता है ! मैं अभी जीती हूँ ! (रोती है)

बा०—(माँ का अञ्चल पकड़ के) माँ तुमको कोई मोल लेगा तो आपको भी मोल लेगा। आँ आँ माँ लोती काए को औ (कुछ रोना सा मुँह बना के शैव्या का आञ्चल पड़क कर झूलने लगता है)

शै०—(आँसू पोंछकर) मेरे भाग्य से पूछ।

ह०—आह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था ? हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई, हम उनको कुछ धीरज भी न दे आये। उनकी अब कौन गति होगी। हा ! यह नहीं कि राज छूटने पर भी छुटकारा हो। अब यह देखना पड़ा। हृदय तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक और स्त्री को बिकता देख कर टुकड़े-टुकड़े क्यों नहीं हो जाते ?" (बारम्बार लम्बी साँस लेकर आँसू बहाता है)

शै०—(कोई महात्मा इत्यादि कहती हुई ऊपर देखकर) क्या कहा ? "क्या-क्या करोगी ?" "पर पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और सब सेवा करूँगी।" (ऊपर देखकर) क्या कहा ? "इतने मोल पर कौन लेगा ?" आर्य ! कोई साधु ब्राह्मण महात्मा कृपा करके ले ही लेंगे।

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उ०—क्यों रे कौडिन्य ! सच ही दासी बिकती है ?

बा—हाँ गुरुजी ! क्या मैं झूठ कहूँगा ? आप ही देख लीजियेगा।

उ०—तो चल, आगे आगे भीड़ हटाता चल। देख धारा प्रवाह की भाँति कैसे सब कामकाजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं, भीड़ के मारे पैर धरने को जगह नहीं है और कोलाहल के मारे कान नहीं दिया जाता।

बा०—(आगे आगे चलता हुआ) हटो भाई हटो। (कुछ आगे बढ़कर) गुरूजी ! यह जहाँ भीड़ लगी है वहीं होगी।

उ०—(शैव्या को देखकर) अरे यही दासी बिकती है ?

शै०—(अरे कोई हमको मोल ले इत्यादि कहती और रोती है)

बा—(माता की भाँति तोतली बोली से कहता है)

उ०—पुत्री ! कहो तुम कौन-कौन सेवा करोगी ?

शैं०—पर-पुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्ट भोजन छोड़कर और जो जो कहियेगा सब सेवा करूँगी ।

उ०—वाह ! ठीक है । अच्छा, लो यह सुवर्ण । हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की अग्नि की सेवा से घर के कामकाज नहीं सम्हाल सकती तो तुम सम्हालना ।

शैं०—(हाथ फैला कर) महाराज आपने बड़ा उपकार किया ।

उ०—(शैव्या को भली भाँति देखकर आप ही आप) अहा ! यह निस्सन्देह किसी बड़े कुल की है । इसका मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर पर ही है । जो बोलती है वह धीरे-धीरे और बहुत सम्हाल के बोलती है । हा ! इसकी यह गति क्यों हुई ! (प्रगट) पुत्री तुम्हारे पति हैं न ?

शैं०—(राजा की ओर देखती है)

ह०—(आप ही आप दुःख से) अब नहीं हैं । पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो !

उ०—(राजा को देखकर आश्चर्य से) अरे यह विशाल नेत्र, प्रशस्त वक्षस्थल, और संसार की रक्षा करने के योग्य लम्वी-लम्बी भुजा वाला कौन मनुष्य है, और मुकुट के योग्य सिर पर तृण क्यों रखा है (प्रगट) महात्मा तुम हमको अपने दुःख का भागी समझो और कृपापूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहो ।

ह०—भगवान् और तो विदित करने का अवसर नहीं है, इतना ही कह सकता हूँ कि ब्राह्मण के ऋण के कारण यह दशा हुई ।

इ०—तो हम से धन लेकर शीघ्र ऋण-मुक्त हूजिये ।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) राम राम ! यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है । आपसे धन लेकर हमारी कौन गति होगी ?

उ०—तो पाँच सौ मोहर पर आप दोनों में से जो चाहो सो हमारे सङ्ग चले ।

शैं०—(राजा से हाथ जोड़ कर) नाथ हमारे आछत आप मत बिकिये, इतनी विनती मानिये (रोती है)

ह०—(आँसू रोककर) अच्छा ! तुम्हीं जाओ (आप ही आप) हा ! यह वज्र हृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता !

शैं०—(राजा के कपड़े में सोना बाँधती हुई) नाथ ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे। (रोती हुई उपाध्याय से) आर्य ! आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्यपुत्र का भली भाँति दर्शन कर लूँ। फिर यह मुख कहाँ और मैं कहाँ।

उ०—हाँ हाँ, मैं जाता हूँ, कौडिन्य यहाँ है, तुम उसके साथ आना। (जाता है)

शैं०—(रोकर) नाथ ! मेरे अपराधों को क्षमा करना।

ह०—(अत्यन्त घबड़ा कर) अरे अरे विधाता ! तुझे यही करना था। (आप ही आप) हा ! पहिले महारानी बना कर अब दैव ने इसे दासी बनाया। यह भी देखना बदा था। हमारी इस दुर्गति से आज कुलगुरु भगवान सूर्य का भी मुख मलिन हो रहा है। (रोता हुआ प्रगट रानी से) प्रिये ! सर्व भाव से उपाध्याय को प्रसन्न करना और सेवा करना।

शैं०—(रोकर) नाथ, जो आज्ञा।

ब०—उपाध्यायजी गये, अब चलो जल्दी करो।

ह०—(आँखों में आँसू भरके) देवी ! (फिर रुक कर अत्यन्त सोच से आप-ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूँ, अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया। (धैर्य से) देवी, उपाध्याय की आराधना भली-भाँति करना और इसके सब शिष्यों से भी सुहृद भाव रखना, ब्राह्मण की स्त्री की प्रीतिपूर्वक सेवा करना, बालक का यथासम्भव पालन करना और अपने धर्म और प्राण की रक्षा करना। विशेष हम क्या समझावें। जो दैव दिखावे उसे धीरज से देखना। (आँसू बहते हैं)

शैं०—जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर कर रोती है)

ह०—(धैर्य पूर्वक) प्रिये ! देर मत करो, बटुक घबरा रहे हैं।

शैं०—(उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई धीरे-धीरे चलती है)

बा०—(राजा से) पिता मा कहाँ जाती ऐं ?

ह०—(धैर्य से आँसू रोक कर) जहाँ हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया है।

बा०—(बटुक से) अले मा को मत लेजा। (माँ का अंचल पकड़ कर खींचता है।)

बटु०—(बालक को ढकेल कर) चल चल देर होती है।

बा०—(ढकेलने से गिर कर रोता हुआ उठ कर अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता की ओर देखता है।)

ह०—ब्राह्मण देवता ! बालकों के अपराध से रुष्ट नहीं होना। (बालक को उठा कर धूल पोंछ के मुँह चूमता हुआ) पुत्र ! मुझ चाण्डाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिए। जाओ माता के संग, मुझ भाग्यहीन के साथ रह कर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये धैर्य करो। अपना कुल और जाति स्मरण करो। अब देर होती है।

(रानी और बालक रोते हुए बटुक के साथ जाते हैं)

ह०—धन्य हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे सिवाय और ऐसा कठोर हृदय किसका होगा ? संसार में धन और जन छोड़कर लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, पर तुमने उसका भी त्याग किया।

(विश्वामित्र आते हैं)

ह०—(पैर पर गिर प्रणाम करता है)

वि०—ला, दक्षिणा ! अब साँझ होने में कुछ देर नहीं है।

ह०—(हाथ जोड़कर) महाराज आधी दक्षिणा लीजिए, आधी अभी देता हूँ। (सोना देता है)

वि०—हम आधी दक्षिणा ले के क्या करें ? दे चाहे जहाँ से सब दक्षिणा।

(नेपथ्य में)

धिक् तपो धिक् व्रतमिदं धिक् ज्ञान बहुश्रुत।
नीतिवानसि यद् ब्रह्मन् हरिश्चन्द्रमिमां दशाम्॥

वि०—(बड़े क्रोध से) आः हमको धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है (ऊपर देखकर) अरे विश्वदेवा ! (क्रोध से जल हाथ में लेकर) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियो ! तुम अभी विमान से गिरो और क्षत्रिय के कुल में

तुम्हारा जन्म हो और वहाँ भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ मारे जाओ।'[1] (जल छोड़ते हैं)

(नेपथ्य में हाहाकार के साथ बड़ा शब्द होता है)

(सुनकर और ऊपर देखकर आनन्द से) ह ह ह ह! अच्छा हुआ यह देखो किरीट कुण्डल बिना मेरे क्रोध से विमान छूटकर विश्वदेवा उलटे ही होकर नीचे गिरते हैं और हमको धिक्कार दें।

ह०—(ऊपर देखकर भय से) वाह रे तप का प्रभाव! (आप ही आप) तब तो हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया है, यह बड़ा अनुग्रह है। (प्रगट) भगवान् यह स्त्री वेचकर आधा धन पाया है सो लो, और हम अपने को वेचकर अभी देते हैं।

(नेपथ्य में)

अरे, अब तो नहीं सही जाती।

वि—हम आधा न लेंगे, चाहे जहाँ से अभी सब दे।

ह०—(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि पुकारता हुआ घूमता है)

(चाण्डाल के वेष में धर्म और सत्य आते हैं)[2]

धर्म—(आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरिरूप जगत हमरे बल चालत।
जल थल नभ थिर भो प्रभाव मरजाद न टालत॥
हम ही नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
इक हम ही संग जात, तजत जब पितु सुत नारी॥
सो हम नित थित सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सो सत्य परिच्छन नृपुति को आजु भेष हम यह कियो॥

---

१. यही पाँचों विश्वादेवा विश्वमित्र के शाप से द्वापर में द्रौपदी के पाँच पुत्र हुए थे, जिन्हें अश्वत्थामा ने बालकपन ही में मार डाला।

२. काँत, काछे, काला रंग, लाल नेत्र, सिर पर छोटे-छोटे घुंघराले बाल और शरीर नंगा, बातों में मतवालापन झलकता हुआ।

(आश्चर्य से आप ही आप) सचमुच इस राजर्षि के समान दूसरा आज त्रिभुवन में नहीं है।

(आगे बढ़कर प्रकट) अरे ! हरजनवा ! मोहर का सन्दूक ले आवा है न !

सत्य—क चौधरी ! मोहर ले के का करवो ?

धर्म—तोह से काम पूछै से ?

(दोनों आगे बढ़ते हुए फिरते हैं)

ह०—(अरे सुनो भाई सेठ साहूकार इत्यादि दो तीन वेर पुकार के इधर उधर घूम कर) हाय ! कोई नहीं बोलता और कुलगुरु भगवान् सूर्य भी आज हमसे रुष्ट होकर शीघ्र ही अस्ताचल जाया चाहते हैं। (घबराहट दिखाता है।)

धर्म—(आप ही आप) हाय हाय ! इस समय इस महात्मा को बड़ा कष्ट है। तो अब चलें आगे। (आगे बढ़कर) अरे ! अरे ! हम तुमको मोल लेंगे, लेव यह पाँच सौ मोहर लेव।

ह०—(आनन्द से आगे बढ़कर) वाह कृपानिधान, बड़े अवसर पर आये) लाइये (उसको पहचान कर) आप मोल लेंगे ?

धर्म—हाँ हम मोल लेंगे। (सोना देना चाहता है)

ह०—आप कौन हैं ?

धर्म—

हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनों पार
सब मसान पर हमरा रज। कफन माँगने का है काज ॥
फूलमती देवी[1] के दास। पूजैं सती मसान निवास ॥
धनतेरस और रात दिवाली। बल चढ़ाय के पूजैं काली ॥
सो हम तुमको लेंगे मोल। देंगे मोहर गाँठ से खोल ॥

---

१. प्राचीन काल में चाण्डालों की कुलदेवी चण्डकात्यायनी थी परन्तु इस काल में फूलमती इन लोगों की कुलदेवी है।

(मत्त की भाँति चेष्टा करता है)

ह०—(बड़े दुख से) अहह ! बड़ा दारुण व्यसन उपस्थित हुआ है। विश्वामित्र (से भगवन् मैं पैर पड़ता हूँ, मैं जन्म भर आपका दास होकर रहूँगा, मुझे चाण्डाल होने से बचाइये।

वि०—छि: मूर्ख। भला हम दास लेके क्या करेंगे ? "स्वयं दासास्तपस्विन:"।

ह०—(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा कीजियेगा हम सब करेंगे।

वि०—सब करेगा न ? (हाथ ऊपर उठाकर) धर्म के साक्षी देवता लोग सुनें, यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूँगा।

ह०—हाँ हाँ, जो आप आज्ञा कीजियेगा सब करूँगा।

वि०—तो इसी ग्राहक के हाथ अपने को, बेचकर अभी हमारी शेष दक्षिणा चुका दे।

ह०—जो आज्ञा (आप ही आप) अब कौन सोच है (प्रकट धर्म से) हम एक नियम पर बिकेंगे।

धर्म—वह कौन ?

ह०—भीख असन सम्बल बसन, रखिहौं दूर निवास॥
जो प्रभु आज्ञा होइ है, करि हौं सब ह्वै दास॥

धर्म ठीक है, लेव सोना। (दूर से राजा के आँचल में मोहर देता है)

ह०—(लेकर हर्ष से आप ही आप)

ऋन छूटचो पूरचो वचन, द्विजहु न दीनों शाप।
सत्यपाल चाण्डाल हूँ, होइ आजु मोहि दाप॥

(प्रकट विश्वामित्र से) भगवन् लीजिये मुहर।

वि०—(मुँह चढ़ाकर) सचमुच देता है।

ह०—हाँ हाँ, यह लीजिये ! (मोहर देते हैं)

वि०—(लेकर) स्वस्ति (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी। (जाना चाहते हैं)

ह०—(हाथ जोड़ कर) भगवान् ! दक्षिणा में देर होने का अपराध क्षमा हुआ न ?

वि०—हाँ, क्षमा हुआ। अब हम जाते हैं।

ह०—भगवन् ! प्रणाम करता हूँ।

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

ह०—अब चौधरी जी (लज्जा से रुक कर) स्वामी की जो आज्ञा हो वह करें।

धर्म—(मत्त की भाँति नाचता हुआ)

जाओ अभी दक्खिनी मशान। लेव वहाँ कफ्फन का दान ॥
जो कर तुमको नहीं चुकावे। सो किरिया करने नहि पावे ॥
चलो घाट पर करो निवास। भए आज से हमरे दास ॥

ह०—जो आज्ञा।

(जवनिका गिरती है)

इति तीसरा अङ्क।

चौथा अंक

स्थान—दक्षिण श्मशान, नदी, पीपल का बड़ा पेड़, चिता, मुरदे, कौए, सियार, कुत्ते, हड्डी इत्यादि

(कम्बल ओढ़े और एक मोटा लट्ठ लिए हुए राजा हरिश्चन्द्र दिखाई पड़ते हैं)

ह०—(लम्बी साँस लेकर) हाय ! अब जन्म भर यही दुख भोगना पड़ेगा ।

जाति दास चण्डाल की, घर घनघोर मसान ।
कफन कसौटी को करम, सब ही एक समान ।।

न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं । बड़ों ने सच कहा है । दुःख से दुःख जाता है । दक्षिणा का ऋण चुका तो, यह कर्म करना पड़ा । हम क्या क्या सोचें । अपनी अनाथ प्रजा को, या दीन नातेदारों को, या अशरण नौकरों को, या रोती हुई दासियों को, या सूनी अयोध्या को, या दासी बनी महारानी को, या उस अनजान बालक को, या अपने ही चाण्डालपने को । हा ! बटुक के धक्के से गिर कर रोहिताश्व ने क्रोध भरी और रानी ने जाते समय करुणा-भरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलता । (घबड़ाकर) हा देवी ! सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी होकर तुम वेची गईं और दासी बनीं । हा ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूल की माला भी नहीं गूँथ सकती थीं उनसे बरतन कैसे माँजोगी (मोह प्राप्त होना चाहता है पर सम्हल कर) अथवा क्या हुआ ? यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा ।

वेच देह दारा सुअन, होइ दास हू मन्द ।
राख्यो निज बच सत्य करि, अभिमानी हरिचन्द ।।

(आकाश से पुष्प वृष्टि होती है)

अरे यह असमय में पुष्पवृष्टि कैसी ? किसी पुन्यात्मा का मुरदा आया होगा। तो हम सावधान हो जायँ (लट्ठ कन्धे पर रखकर फिरता हुआ) खबरदार ! खबरदार ! बिना हमसे कहे और बिना हमें आधा कफन दिये कोई संस्कार न करे। (यही कहता हुआ निर्भय मुद्रा से इधर-उधर फिरता है) (नेपथ्य में कोलाहल सुनकर) हाय-हाय ! कैसा भयंकर श्मशान है। दूर से मण्डल बाँध-बाँध कर चोंच बाए, डैना फैलाए, कङ्कालों की तरह मुर्दों पर गिद्ध कैसे गिरते हैं और कैसा माँस नोच-नोच कर आपस में लड़ते और चिल्लाते हैं। इधर अत्यन्त कर्णकटु अमंगल के नगाड़े की भाँति एक के शब्द की लाग से दूसरे सियार कैसे रोते हैं। इधर चिर्राइन फैलाती हुई चट-चट करती चितायें कैसे जल रही हैं, जिनमें कहीं से मांस के टुकड़े उड़ते हैं, कहीं लोहू व चरबी बहती है। आग का रंग मांस के सम्बन्ध से नीला-पीला हो रहा है, ज्वाला घूम-घूम कर निकलती है, आग कभी एक साथ धधक उठती है कभी मन्द हो जाती है, धूआँ चारों ओर छा रहा है। (आगे देखकर आदर से) अहा ! यह वीभत्स व्यापार भी बड़ाई के योग्य है। शव ! तुम धन्य हो कि इन पशुओं के इतने काम आते हो; अतएव कहा है—

मरनो भलो विदेश को जहाँ न अपनो कोय।
माटी खाँय जनावरा, महा महोच्छव होय।।"

अहो ! देखो—

सिर पै बैठचो काग आँख दोउ खाय निकारत।
खींचत जीभहि स्यार अतिहि आनन्द उर धारत।।
गिद्ध जाँघ कहँ खोदि-खोदि कै माँस उचारत।
स्वान अँगुरिन काटि-काटि के खान विचारत।।

बहु चील नोचि लै जात तुच मोह मढ्यौ सब को हियो।
मनु ब्रह्मभोज जिजमान कोउ आजु भिखारिन कहँ दियो।।

अहा ! शरीर भी कैसी निस्सार वस्तु है—

सोई मुख सोई उदर, सोई कर पद दोय।
भयो आज कछु और ही, परसत जेहि नहिं कोय।।

हाड़ माँस लाली रकत, बसा तुचा सब सोय ।
छिन्न भिन्न दुर्गन्ध मय, मरे मनुस के होय ॥
कादर जेहि लखि कँ डरत, पंडित पावत लाज ।
अहो ! व्यर्थ संसार को, विषय बासना साज ॥

अहा ! मरना भी क्या वस्तु है—

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यौ ।
सोई अङ्ग जेहि प्रिय कर जान्यो ॥
सोई भुज जे प्रिय गर डारें ।
सोई भुज जिन नर विक्रम पारें ॥
सोई पद जेहि सेवक बन्दत ।
सोई छवि जेहि देखि अनन्दत ॥
सोई रसना जहँ भाव अनेका ।
जेहि सुनिके हिय नारि जुड़ानी ॥
सोई हृदय जहँ भाव अनेका ।
सोई सिर जहँ निज बच टेका ॥
सोई छवि-मय अङ्ग सुहाए ।
आज जीव बिनु धरनि सुहाए ॥
कहाँ गई वह सुन्दर शोभा ।
जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ॥
प्रानहुं ते बढ़ि जा कहँ चाहत ।
ता कहँ आजु सबै मिलि दाहत ॥
भूल बोझ हु जिन न सहारे ।
तिन पैं बोझ काठ बहु डारे ॥
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी ।
करत कपाल क्रिया तिन केरी ॥
छिन हूँ जे न भये कहुँ न्यारे ।
तेउ बन्धुगन छाँड़ि सिधारे ॥
जो दृगकोरि महीप निहारत ।
आजु काक जेहि भोज बिचारत ॥

भुजबल जे नहिं भुवन सभाए।
ते लखियत मुख कफन छिपाए॥
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे।
गने काल सब एकहि लेखे॥
सुभग कुरूप अमृत विष साने।
आजु सबैं इक भाव बिकाने
पुरु धधीच कोऊ अब नाहीं।
रहे नाम ही ग्रन्थन माहीं॥

अहा! देखो वही सिर जिस पर मन्त्र से अभिषेक होता था, कभी नवरत्न का मुकुट रखा जाता था, जिसमें इतना अभिमान था कि इन्द्र को भी तुच्छ गिनता था और जिसमें बड़े-बड़े राजाओं के जीतने के मनोरथ भरे थे, आज पिशाचों का गेंद बना है और लोग उसे छूने में भी घिन करते हैं। (आगे देखकर) अरे यह श्मशान देवी है। अहा! कात्यायनी को भी कैसा वीभत्स उपचार प्यारा है? यह देखो! डोम लोगों ने सूखे गले-सड़े फूलों की माला गंगा में से पकड़-पकड़ कर देवी को पहना दी हैं और कफनों की ध्वजा लगा दी है। मरे बैल और भैंसों के गले के घंटे पीपल की डाल में लटक रहे हैं, जिनमें लोलक की जगह नली की हड्डी लगी है। घण्टे के पानी से चारों ओर से देवी का अभिषेक होता है और पेड़ के खम्भे में लोहू[२] के थापे लगे हैं। नीचे जो उतारों की बलि दी गई है, उसके खाने को कुत्ते और सियार लड़ लड़ कर कोलाहल मचा रहे हैं।

(हाथ जोड़ कर)

"भगवति[१]! चण्डि! प्रेते! प्रेतविमाने! लसतप्रेते!
प्रेतास्थि रौद्ररूपे! प्रेताशिनि! भैरवि! नमस्ते॥"

---

१. इसमें प्रायः सब श्लोक आर्यमेमीश्वर के बनाये चण्ड कौशिक से उद्धृत किये गये हैं।

२. प्राचीनकाल में राजा के अपराधी लोग श्मशान पर गला काट कर मारे जाते थे, इसी से यहाँ श्मशान के वर्णन में लोहू का वर्णन है।

(नेपथ्य में) राजन् ! हम केवल चाण्डालों के प्रणाम के योग्य हैं। तुम्हारे प्रणाम से लज्जा आती है। माँगों, क्या वर माँगते हो ?

ह०—(सुनकर आश्चर्य से) भगवति ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हमारे स्वामी का कल्याण कीजिए।

(नेपथ्य में) साधु महाराज ! हरिश्चन्द्र साधु !

ह०—(ऊपर देखकर) अहा ! स्थिरता किसी को भी नहीं है। जो सूर्य उदय होते ही पद्मिनीवल्लभ और लौकिक वैदिक दोनों कर्म का प्रवर्त्तक था, जो दोपहर तक अपना प्रचण्ड प्रताप क्षण-क्षण बढ़ाता गया, जो गगनांगन का दीपक और काल-सर्प का शिखामणि था, वह इस समय परकटे गिद्ध की भाँति अपना सब तेज गँवाकर देखो समुद्र में गिरा चाहता है।

अथवा

साँझ सोई पट लाल कसे कटि सूरज खप्पर हाथ लह्यो है।
पच्छिन के बहु शब्दन के मिस जीअउचाटन मन्त्र कह्यो है॥
मद्य भरी नर खोपरी सों ससि को नव बिम्बहु धाइ गह्यो है।
दै बलि जीव पसू यह मत्त ह्वै काल कपालिक नाचि रह्यो है॥
सूरज धूम बिना की चिता सोई अन्त में लै जल माँहि बहाई।
बोलैं घने तरु बैठि बिहंगम रोअत सो मन लोग लोगाई॥
धूम अँधार कपाल निसाकर, हाड़ नक्षत्र लहू सी ललाई।
आनन्द हेतु निशाचर के यह काल समान सी साँझ बनाई॥

अहा हा चारों ओर से पक्षी सब कैसा शब्द करते हुए अपने-अपने घोसलों की ओर चले आते हैं। वर्षा से नदी का भयङ्कर प्रवाह, साँझ होने से श्मशान के पीपल पर कौओं का एक सङ्ग अमङ्गल शब्द से काँव-काँव करना और रात के आगमन से एक सन्नाटे के समय चित्त में कैसी उदासी और भय उत्पन्न करता है। अन्धकार बढ़ता ही जाता है। वर्षा के कारण इन श्मशान वासी मण्डूकों का टर्रं टर्रं करना भी कैसा डरावना मालूम होता।

रुरुआ चहु-दिसि रटत डरत सुनि के नर नारी।
फट फटाई दोउ पंख उलूकहु रटत पुकारी॥

अन्धकार बस गिरत काक अरु चील करत रव।
गिद्ध-गरुड़-हड़डिल्ल भजत लखि निकट भयद रव।।
रोअत सियार, गरजत, नदी, स्वाँन भूँकि डरपावई।
संग दादुर झींगुर रुदन धुनि मिलि स्वर तुमुल मचावई।।

इस समय यह चिता भी कैसी भयङ्कर मालूम होती है। किसी का सिर चिता के नीचे लटक रहा है, कहीं आँच से हाथ-पैर गिर पड़े हैं। कहीं शरीर आधा जला है, कहीं बिल्कुल कच्चा है किसी को वैसे ही पानी में बहा दिया है, किसी को किनारे ही छोड़ दिया है, किसी का मुँह जल जाने से दाँत निकला हुआ भयङ्कर हो रहा है और कोई आग में ऐसा जल गया है कि कहीं पता भी नहीं है। वाह रे! शरीर तेरी क्या गति होती है!! सचमुच मरने पर इस शरीर को चटपट जला ही देना योग्य है, क्योंकि ऐसे रूप और गुण जिस शरीर में थे उसको कीड़ों वा मछलियों से नुचवाना और सड़ा कर दुर्गन्धमय करना बहुत ही बुरा है। न कुछ शेष रहेगा न दुर्गति होगी। हाँ, चलो आगे चलें। (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर घूमता है)

(पिशाच और डाकिनीगण परस्पर आमोद करते और गाते-बजाते हुए आते हैं।)

पि० और डा०—हैं भूत प्रेत हम, डायन हैं छमाछम।
हम सेवें मसान शिव को भज बोलें बम बम बम।।

पि०—हम कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ कड़ हड्डी को तोड़ेंगे।
हम भड़ भड़ धड़ धड़ पड़ पड़ सिर सबका फोड़ेंगे।।

डा०—हम घुट घुट घुट घुट घुट घुट लोहू पिलावेंगीं।
हम चट चट चट चट चट चट ताली बजावेंगीं।।

सब—हम नाचें मिल कर थेई थेई थेई थेई कूदें धम् धम् धम्।
हैं भूत प्रेत हम डायन हैं छमाछम।।

पि०—हम काट काट कर शिर को गेंद उछालेंगे।
हम खींच खींच कर चरबी पँशाखा गालेंगे।।

डा०—हम माँग में लाल लाल लोहू का सेंदूर लगावेंगीं।
हम नस के तागे चमड़े का लहँगा बनावेंगीं।

सब—हम धज से सज के वज के चलेंगे चमकेंगे चम चम चम ।
वि०—लोहू का मुंह से फरं फरं फुहारा छोड़ेंगे ।
माला गले पहिरने का अन्तड़ी को जोड़ेंगे ।।
डा०—हम लाद के ओंघे मुरदे चौकी बनावेंगी ।
कफन बिछा के लड़कों को उस पर सुलावेंगी ।।
सब—हम मुख से गावेंगे ढोल बजावेंगे ढम ढम ढम ढम ढम ।।

ह०—(कौतुक से देख कर) पिशाचों की, क्रीड़ा कौतूहल भी देखने के योग्य है । अहा ! यह कैसे काले-काले झाड़ के से सिर के बाल खड़े किये लम्वे-लम्वे हाथ-पैर विकराल दाँत लम्बी जीभ निकाले इधर-उधर दौड़ते और परस्पर किलकारी मारते हैं मानो भयानक रस की सेना मूर्तिमान होकर यहाँ स्वच्छन्द विहार कर रही है । हाय-हाय ! इनका खेल और सहज व्यवहार भी कैसा भयङ्कर है । कोई कटाकट हड्डी चवा रहा है, कोई सिर-खोपड़ियों में लोहू भर-भर कर पीता है, कोई सिर को गेंद बना कर खेलता है, कोई अन्तड़ी निकाल गले में डाले है और चन्दन की भाँति चरबी और लहू शरीर में पोत रहा है, एक दूसरे से मांस छीन कर ले भागता है, एक जलता मांस मारे तृषा के मुँह में रख लेता है, पर जब गरम मालूम पड़ता है तो थू-थू करके थूक देता है और दूसरा उसी को फिर झट से खा जाता है । हा ! देखो यह चुड़ैल एक स्त्री की नाक नथ समेत नोंच लाई है, जिसे देखने को चारों ओर से सब भुतने एकत्र हो रहे हैं और सभी को इसका बड़ा कौतुक हो गया है ! हँसी में परस्पर लोहू का कुल्ला करते हैं और जलती लकड़ी और मुर्दों के अंगों से लड़ते हैं और उनको ले-ले कर नाचते हैं । यदि तनिक भी क्रोध में आते हैं तो श्मशान के कुत्तों को पकड़-पकड़ कर खा जाते हैं । अहा ! भगवान् भूतनाथ ने बड़े कठिन स्थान पर योग साधना की है । (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिरता है) (ऊपर देख-कर) आधी रात हो गई, वर्षा के कारण अँधेरी बहुत ही छा रही है, हाथ से हाथ नहीं सूझता ! चाण्डाल कुल की भाँति श्मशान पर तम का भी आज राज हो रहा है ! (स्मरण करके) हा ? इस दुःख की दशा में भी हम से प्रिया अलग पड़ी है । कैसी भी हीन अवस्था हो, पर

५

अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता है। सच है—

"टूट टाट घर टपकत खटियो टूट।
पिय कै बाँह उसिसवाँ सुख के लूट।"

विधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा, यह वर्षा और यह दुःख। हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा, पर जिसने सपने में भी दुख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि! धीरज धरो, धीरज धरो! तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है, जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। (ऊपर देखकर) पानी बरसने लगा। अरे! (धोती भली-भाँति ओढ़कर) हमको तो वह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो—

चपला की चमक चहूँगा सो लगाई चिता,
चिनगी चिलक पट बीजना चलायो है।
हेती बगलाम स्याम बादर सु भूमि कारी,
वीर बधू लहू बूंद भुव लपटायो है।
हरीचन्द नीर धार आंसू परत जहाँ,
दादुर को सोर रोर दुलियन मचायो है।
दाहन वियोग दुखियान को मरे हूँ यह,
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है॥

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिर कर)

इन्द्रकाज हू सरिस जो आयसु लांघै कोय।
यह प्रचण्ड भुजदण्ड मम, प्रतिभट ताको होय॥

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है? (नेपथ्य में) हम हैं।

ह०—अरे हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है। चलें, जहाँ से आवाज आज आई है वहाँ चलकर देखें। (आगे बढ़कर नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है?

चिता भस्म सब अङ्ग लगाए। अस्थि अभूसन विवध बनाए ॥
हाथ कपाल समान जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत ॥

(कापालिक के वेष में धर्म आता है[1])

धर्म०—अरे हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्म रति, करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान समान हम, धारि अनन्द बिराग ॥

(आगे बढ़कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत -
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत ॥
हम ही नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
इक हम ही सँग जात तजत जब पितु सुत नारी ॥
सो हम नित थित सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो ॥

(कुछ सोच कर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःख परम्परा अत्यन्त शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है—

सह विविध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छांड़हीं, जे जग साँचे लोग ॥
वरु सूरज पच्छिम उगे, विन्ध्य तरै जल मांहि।
सत्य बार जन पै कबहुं, निज बच टारत नांहि ॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख, सुख को सुख गिनते ही नहीं चलें। उनके पास चलें। (आगे बढ़ कर और देखकर) अरे ! यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं। (प्रगट) महाराज, कल्याण हो।

---

१. गेरुवे वस्त्र का काछा कांछे, गेरुआ कफनी पहने, सिर के बाल खोले, सेंदूर का अर्द्धचन्द्र किये, नंगी तलवार गले में लटकी हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में भभूत पोते [illegible] आँखें लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहने।

अपना प्यारा जो पास रहे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता है। सच है—

"टूट टाट घर टपकत खटियो टूट।
पिय कै बाँह उसिसवाँ सुख के लूट।"

विधना ने इस दुःख पर भी वियोग दिया। हा, यह वर्षा और यह दुःख। हरिश्चन्द्र का तो ऐसा कठिन कलेजा है कि सब सहेगा, पर जिसने सपने में भी दुख नहीं देखा वह महारानी किस दशा में होगी। हा देवि ! धीरज धरो, धीरज धरो ! तुमने ऐसे ही भाग्यहीन से स्नेह किया है, जिसके साथ सदा दुःख ही दुःख है। (ऊपर देखकर) पानी बरसने लगा। अरे ! (धोती भली-भाँति ओढ़कर) हमको तो वह वर्षा और श्मशान दोनों एक ही से दिखाई पड़ते हैं। देखो—

चपला की चमक चहूँगा सो लगाई चिता,
चिनगी चिलक पट बीजना चलायो है।
हेती बगलाम स्याम बादर सु भूमि कारी,
वीर बधू लहू बूंद भुव लपटायो है।
हरीचन्द नीर धार आंसू परत जहाँ,
दादुर को सोर रोर दुलियन मचायो है।
दाहन वियोग दुखियान को मरे हूँ यह,
देखो पापी पावस मसान बनि आयो है।।

(कुछ देर तक चुप रह कर) कौन है ? (खबरदार इत्यादि कहता हुआ इधर-उधर फिर कर)

इन्द्रकाज हू सरिस जो आयसु लांघै कोय।
यह प्रचण्ड भुजदण्ड मम, प्रतिभट ताको होय।।

अरे कोई नहीं बोलता। (कुछ आगे बढ़कर) कौन है ? (नेपथ्य में) हम हैं।

ह०—अरे हमारी बात का यह उत्तर कौन देता है। चलें; जहाँ से आवाज आज आई है वहाँ चलकर देखें। (आगे बढ़कर नेपथ्य की ओर देखकर) अरे यह कौन है ?

चिता भस्म सब अङ्ग लगाए। अस्थि अभूसन विवध बनाए॥
हाथ कपाल समान जगावत। को यह चल्यो रुद्र सम आवत॥

(कापालिक के वेष में धर्म आता है[1])

धर्म०—अरे हम हैं।

वृत्ति अयाचित आत्म रति, करि जग के सुख त्याग।
फिरहिं मसान समान हम, धारि अनन्द बिराग॥

(आगे बढ़कर महाराज हरिश्चन्द्र को देखकर आप ही आप)

हम प्रतच्छ हरि रूप जगत हमरे बल चालत-
जल थल नभ थिर मम प्रभाव मरजाद न टालत॥
हम ही नर के मीत सदा साँचे हितकारी।
इक हम ही सँग जात तजत जब पितु सुत नारी॥
सो हम नित थित सत्य में जाके बल सब जग जियो।
सोइ सत्य परिच्छन नृपति को आजु भेष हम यह कियो॥

(कुछ सोच कर) राजर्षि हरिश्चन्द्र की दुःख परम्परा अत्यन्त शोचनीय और इनके चरित्र अत्यन्त आश्चर्य के हैं। अथवा महात्माओं का यह स्वभाव ही होता है—

सह विविध दुख मरि मिटत, भोगत लाखन सोग।
पै निज सत्य न छांड़हीं, जे जग साँचे लोग॥
वरु सूरज पच्छिम उगे, विन्ध्य तरै जल माँहि।
सत्य बीर जन पै कबहुँ, निज बच टारत नाँहि॥

अथवा उनके मन इतने बड़े हैं कि दुःख को दुःख, सुख को सुख गिनते ही नहीं चलें। उनके पास चलें। (आगे बढ़ कर और देखकर) अरे! यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं। (प्रगट) महाराज, कल्याण हो।

---

१. गेरुवे वस्त्र का काछा काँछे, गेरुआ कफनी पहने, सिर के बाल खोले, सेंदूर का अर्द्धचन्द्र किये, नंगी तलवार गले में लटकी हुई, एक हाथ में खप्पड़ बलता हुआ, दूसरे हाथ में चिमटा, अंग में मभूत पोते नशे से आँखें लाल, लाल फूल की माला और हड्डी के आभूषण पहने।

ह०—(प्रणाम करके) आइये योगिराज ।

ध०—महाराज, हम अर्थी हैं ।

ह०—(लज्जा और विकलता का नाट्य करता है ।)

ध०—महाराज ! आप लज्जा मत कीजिये । हम लोग योगबल से सब कुछ जानते हैं । आप इस दशा पर भी हमारा अर्थ पूर्ण करने के लिए बहुत हैं । चन्द्रमा राहू से ग्रसा रहता है तब भी दान दिलवा कर भिक्षुओं का कल्याण करता है ।

ह०—हमारे योग्य जो कुछ हो आज्ञा कीजिये ।

ध०—अंजन गुटिका पादुका, धातुभेद बैताल ।
बज्र रसायन जोगिनी, मोहि सिद्ध यहि काल ।।[1]

ह०—तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूँ ।

ध०—आज्ञा यही है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गये हैं, पर विघ्न इसमें बाधक होते हैं सो विघ्नों का निवारण कर दीजिये ।

ह०—आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूँ । इससे जिसमें मेरा धर्म न जाय वह मैं न करने को तैयार हूँ ।

ध०—(आप ही आप) राजन् ! जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दिन पृथ्वी किस के बल से ठहरेगी । (प्रत्यक्ष) महाराज ! इसमें धर्म न जायगा । क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लंघन करते ही नहीं । सिद्धि का आकर इसी श्मशान के निकट ही है, और अब मैं पुरश्चरण करने जाता हूँ, आप विघ्नों का निषेध कर दीजिए । (जाता है)

---

१. अञ्जनसिद्धि से जमीन से गड़े खजाने देख पड़ते हैं । गुटिका मुँह में रख कर वा पादुका पहन कर चाहे जहाँ अलक्ष्य चला जाय । धातु-भेद से औषध मात्र सिद्ध होती है । वेताल वंश में होकर यथेच्छा काम देता है । वज्र सिद्ध होने से जहाँ गिराओ वहाँ गिरता है । रसायन सिद्ध होने से चाँदी सोना बनते हैं । जोगिनी सिद्ध होने से भूत-भविष्य का वृत्तान्त कह देती है और सब इच्छा पूर्ण करती है । ये ही सिद्धियाँ हैं ।

ह०—(ललकार कर) हटो रे हटो विघ्नो ! चारों ओर से तुम्हारा हमने रोक दिया ।

(नेपथ्य में) महाराजाधिराज ! जो आज्ञा । आप से सत्यवीर की आज्ञा कौन लाँघ सकता है ।

खुल्यो द्वार कल्यान को, सिद्ध जोग तप आज ।
निधि सिधि विद्या सब करहिं, अपने मन को काज ।।

ह०—(हर्ष से) बड़े आनन्द की बात है कि विघ्नों ने हमारा कहना मान लिया है । (विमान पर बैठी तीन महाविद्याएँ आती हैं)[1]

म० वि०—महाराज हरिश्चन्द्र ! बधाई है । हमीं लोगों को सिद्ध करने को विश्वामित्र ने बड़ा परिश्रम किया था, तब देवताओं ने माया से आपको स्वप्न में हमारा रोना सुनाकर हमारा प्राण बचाया है ।

ह०—(आप ही आप) अरे यही सृष्टि की उत्पन्न, पालन और नाश करने वाली महाविद्याएँ हैं, जिन्हें विश्वामित्र भी सिद्ध न कर सके । (प्रगट हाथ जोड़कर) त्रिलोक विजयिनी महाविद्याओं को नमस्कार है ।

म० वि०—महाराज ! हम लोग तो आपके वश में हैं । हमारा ग्रहण कीजिए ।

ह०—देवियो ! यदि हम पर प्रसन्न हो तो विश्वामित्र मुनि की वशवर्तिनी हो, उन्होंने आप लोगों के वास्ते बड़ा परिश्रम किया है ।

म० वि०—धन्य महाराज ! धन्य ! जो आज्ञा (जाती हैं) ।

(धर्म एक वैताल के सिर पर पिटारा रखवाये हुए आता है)

ध०—महाराज का कल्याण हो, आपकी कृपा से महानिधान[2] सिद्ध हुआ । आपको बधाई है । अब लीजिए इस रसेन्द्र को ।

---

१. ब्रह्मा, विष्णु, महेश के वेश में पर-स्त्री का शृङ्गार । खेलने में चित्रपथ के द्वारा परदे के ऊपर इनको दिखलावेंगे और इनकी ओर से बोलने वाला नेपथ्य में से बोलेगा ।

२. महानिधान बुभुक्षित धातुभेदी पारा, जिसे बावन तोला पाव रत्ती कहते हैं ।

या ही के परभाव सों, अमरदेव सम होइ।
जोगी जन बिहरहिं सदा; मेरु शिखर भय खोइ॥

ह०—(प्रणाम करके) महाराज ! दास धर्म के यह विरुद्ध है। इस समय स्वामी से कहे बिना मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है।

घ०—(आश्चर्य से आप ही आप) वाह रे महानुभावता ! (प्रगट) तो इससे स्वर्ण बनाकर आप अपना दास्यत्व छुड़ा लें।

ह०—यह ठीक है, पर मैंने तो विनती की न कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले सब स्वामी का है। क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना स्वत्व मात्र बेच चुका, इससे आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी को यह रसेन्द्र दीजिये।

घ०—(आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य ! धन्य तुम्हारा विवेक ! और धन्य तुम्हारी महानुभावता।

या—चले मेरु वर प्रलय जल, पवन झकोरन पाय।
पै बीरन के मन कबहुँ, चलहिं नहीं ललचाय॥

तो हमें भी इसमें कौन हठ है (प्रत्यक्ष) बैताल ! जाओ, जो महाराज की आज्ञा है, वह करो।

बैं०—जो रावलजी की आज्ञा ! (जाता है)

घ०—महाराज ! ब्रह्ममुहूर्त निकट आया अब हम को भी आज्ञा हो।

ह०—योगिराज ! हमको भूल न जाइयेगा, कभी-कभी स्मरण कीजियेगा।

घ०—महाराज बड़े-बड़े देवता आपका स्मरण करते हैं और करेंगे, मैं क्या कहूँ ! (जाता है)

ह०—क्या रात बीत गई ! आज तो कोई मुरदा नया नहीं आया। रात के साथ ही श्मशान भी शान्त हो चला, भगवान नित्य ही ऐसा करे।

(नेपथ्य में घण्टा नूपुरादि का शब्द सुनकर)

अरे यह बड़ा कोलाहल कैसे हुआ ?

(विमान पर अष्टमहासिद्धि; नवनिधि और बारहों प्रयोग आदि देवता आते हैं)

ह०—(आश्चर्य से) अरे ! यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर श्मशान पर एकत्र हो रहे हैं।

दे०—महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आपके अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूटकर स्वतन्त्र हो गए, अब हम आपके वश में हैं जो आज्ञा हो करें। हम लोग अष्ट महासिद्धि, नव-निधि और बारह प्रयोग सब आपके हाथ में हैं।

ह०—(प्रणाम करके) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हैं तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जनों के और प्रयोग साधकों के पास जाओ।

दे०—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और कौन ऐसा होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे। हमीं लोगों की सिद्धि को बड़े-बड़े योगी, मुनि पच मरते हैं। पर तुमने तृण की भाँति हमारा त्याग करके जगत का कल्याण किया।

ह०—आप लोग मेरे सिर आँखों पर हैं पर मैं क्या करूँ क्योंकि मैं पराधीन हूँ। एक बात और भी निवेदन है, वह यह कि छः अच्छे प्रयोगों की तो हमारे समय में सद्यः सिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो।

दे०—महाराज ! जो आज्ञा। हम लोग जाते हैं। आज आपके सत्य ने शिवजी

---

१. साधारण देवी और देवताओं के देश में अष्ट महासिद्धि यथा अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व। नव निधि यथा पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्चस। बारह प्रयोग यथा मारन, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण और कामनाशन ये छः बुरे और स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण, बन्दीमोचन, कामपूरण और वाकप्रसारण ये छः अच्छे। ये भी चित्रपट में दिखलाये जायँगे।

के कीलन को भी शिथिल कर दिया। महाराज का कल्याण हो। (जाते हैं)

(नेपथ्य में इस भांति मानो राजा हरिश्चन्द्र नहीं सुनता)

(एक स्वर से) तो अप्सरा को भेजें।

(दूसरे स्वर से) छिः मूर्ख। जिनको अष्टसिद्धि नवनिधियों ने नहीं डिगाया उसको अप्सरा क्या डिगावेंगी ?

(एक स्वर से) तो अब अन्तिम उपाय किया जाय ?

(दूसरे स्वर से) हां, तक्षक को आज्ञा दें अब और कोई उपाय नहीं है।

ह०—अहा ! अरुण उदय हुआ चाहता है। पूर्व दिशा ने अपना मुँह लाल किया। (साँस लेकर)

वा चकई को भयो चित्त चीतो चितोति चहुँदिसि चायसों नाची।
ह्वै गई छीन कलाधर की कला जामिनी जोति मनो जम जाँची।।
बोलत कैरी बिहंगम 'देव' संयोगिन की भई सम्पत्ति काँची।
लोहू पियो जो वियोगिनि को सो कियो मुख लाल पिशाचिन प्राची।।

हा ! प्रिये ! इन बरसात की रातों को तुम रो-रो के बिताती होगी ! हा ! वत्स रोहिताश्व, भला हम लोगों ने अपना शरीर बेचा तब दास हुए, तुम बिना बिके ही क्यों दास बन गये !

जेहि सहसन परिचारिका, राखत हार्थाह हाथ।
सो तुम लोटत धूर में, दास बालकन साथ।।
जाको आयसु जग नृपति, सुनतहि धारत सीस।
तेहि द्विज-बटु आज्ञा करत, अहह कठिन अति ईस।।
बिनु तन बेचे बिनु दिये, बिनु जग ज्ञान विवेक।
दैव सर्प दंसित भये, भोगत कष्ट अनेक।।

---

१. शिवजी ने साधनों को कील दिया है जिसमें जल्दी न सिद्ध हों, सो राजा हरिश्चन्द्र ने विघ्नों को जो रोक दिया इससे वह कीलन भी शिवजी की इच्छापूर्वक उस समय दूर हो गया था, क्योंकि यह भी तो एक सबसे बड़ा विघ्न था।

(घबड़ा कर) नारायण ! नारायण ! मेरे मुख से क्या निकल गया ? देवता उसकी रक्षा करें (बाईं आंख का फड़कना दिखा कर) इसी समय में यह महा अपशकुन क्यों हुआ ? (दाहिनी भुजा का फड़कना दिखाकर) अरे और साथ ही मंगल-शकुन भी ! न जाने क्या होनहार है। वा अब क्या होनहार है ? जो होना था सो हो चुका। अब इससे बढ़कर और कौन दशा होगी ? अब केवल मरणमात्र बाकी है ! तो यही है कि सत्य छूटने और दीन होने के पहले ही शरीर छूटे, क्योंकि इस दुष्ट चित्त का क्या ठिकाना है। पर वश क्या है ?

(नेपथ्य में)

पुत्र हरिश्चन्द्र ! सावधान ! यह अन्तिम परीक्षा है। तुम्हारे पुरुषा इक्ष्वाकु से लेकर त्रिशंकु पर्य्यन्त आकाश में नेत्र भरे खड़े एक टक तुम्हारा मुख देख रहे हैं। आज तक इस वंश में ऐसा कठिन दुःख किसी को नहीं हुआ था। ऐसा न हो कि इनका सिर नीचा हो, अपने धैर्य का स्मरण करो।

ह०—(घबड़ाकर ऊपर देखकर) अरे यह कौन है ? कुलगुरु भगवान सूर्य अपना तेज समेटे मुझे अनुशासन कर रहे हैं। (ऊपर) पिता मैं सावधान हूँ, सब दुःखों को फूल की माला की भाँति ग्रहण करूँगा।

(नेपथ्य में रोने की आवाज सुन पड़ती है)

ह०—अरे अब सवेरा होने के समय मुरदा आया ! अथवा चाण्डाल कुल का सदा कल्याण हो, हमें इससे क्या ?

(खबरदार इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा ! हमें रोती छोड़ के कहाँ चले गये ! हाय हाय रे !

ह०—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी इसको पुत्र का है। हाय-हाय ! हमको भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स काम सोंपा है। इससे भी वस्त्र माँगना पड़ेगा।

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शैं०—(रोती हुई) हाय बेटा ! जब बाप ने छोड़ दिया तब तुम भी छोड़ चले। हाय ! हमारी विपत्ति और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा ! हाय-हाय ! हायरे ! अब हमारी कौन गति होगी ? (रोती है)

ह०—हाय-हाय ! इसके पति ने भी छोड़ दिया है। हा ! इस तपस्विना को निष्करुण विध ने बड़ा ही दुःख दिया है।

शैं०—(रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किसने लूट लिया ? हाय मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई ! हाय अब मैं किसका मुँह देखकर जीऊँगी ! हाय ! मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया। हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला ! अरे बेटा तू तो मरे पर भी सुन्दर लगता है। हायरे ! अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल, देख माँ कब की पुकार रही है। बच्चा तू तो एक ही दफे पुकारने में दौड़कर गले से लिपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता ? (शव को बार-बार गले से लगाती, देखती और चूमती है)

ह०—हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता।

शैं०—(पागल की भाँति) अरे यह क्या हो रहा है ! बेटा, कहाँ गये हो ? आओ जल्दी ? अरे अकेले श्मशान में मुझे डर लगता है, यहाँ मुझको कौन ले आया है। अरे ! बेटा जल्दी आओ। अरे क्या कहते हो, मैं गुरु को फल लेने गया था, वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया ? हाय हाय रे !! अरे कहाँ काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को ! अरे वह साँप कहा गया, हमको क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या इस सुकुमार बच्चे ही पर बल दिखाना था ? हमें काट। हाय ! हमको नहीं काटता। अरे यहाँ तो कोई साँप वाँप नहीं है। मेरे लाल, झूठ बोलना कब से सीखे ? हाय-हाय ! मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते ? बेटा गुरूजी पुकार रहे हैं, उनके होम की वेला निकली जाती है। देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। जो जल्दी उनको दूब और वेलपत्र ! हाय ! हमने इतना पुकारा तुम कुछ नहीं बोलते। (जोर से) वेटा साँझ भई, सब विद्यार्थी लोग फिर आये, तुम अब तक क्यों नहीं आये ? (आगे शव देख कर) हाय हाय रे। अरे मेरे लाल को

साँप ने सचमुच डस लिया। हाय लाल। हाय रे। मेरी आँखों के उजियाले को कौन ले गया। हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया। बेटा। अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया। हाय मेरा बसा घर आज किसने उजाड़ दिया। हाय मेरी कोख में किसने आग दी। हाय, मेरा कलेजा किसने निकाल लिया। (चिल्ला-चिल्ला कर रोती है) हाय, लाल कहाँ गये? अरे। अब मैं किसका मुँह देख के जीऊँगी रे? अब माँ कहके मुझको कौन पुकारेगा? अरे आज किस बैरी की छाती ठण्डी भई रे? अरे बेटा आँख खोलो। हाय। मैं सब विपत्ति तुम्हारा ही मुँह देखकर सहती थी सो अब कैसे जीती रहूँगी। अरे। लाल एक बेर तो बोलो। (रोती है)

ह०—न ज़ाने क्यों इसके रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शै०—(रोती हुई) हा नाथ! अरे अपने गोद में खिलाये बच्चे की यह दशा क्या नहीं देखते? हाय! तुमने तो इसको हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हमने इसकी यह दशा करदी। हाय! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहायक होते? भला एक बार लड़के का मुँह तो देख जाओ! अरे मैं अब किसके भरोसे जीऊँगी।

ह०—हाय-हाय! इसकी बातों से तो प्राण मुँह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहाँ से हट चलें (कुछ दूर हटकर उसकी ओर देखता हुआ खड़ा हो जाता है।)

शै०—(रोती हुई) हाय! यह विपता का समुद्र कहाँ से उमड़ पड़ा। अरे छलिया मुझे छलकर कहाँ भाग गया। (देख कर) अरे आयुष की रेखा तो इतनी लम्बी है, फिर अभी यह वज्र कहाँ से टूट पड़ा। अरे ऐसा सुन्दर मुँह, बड़ी-बड़ी आँख, लम्बी-लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब-सा रंग। हाय, मरने के तुझ में कौन से लच्छन थे जो भगवान् ने तुझे मार डाला। हाय लाल। अरे, बड़े-बड़े जोतिषी मुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जियेगा, सो अब झूठ निकला। हाय। पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, जप, होम कुछ भी काम न आया। हाय। तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी तुम्हारा सहायक न हुआ और तुम चल बसे। हाय।

ह०—अरे इन बातों से मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भली भाँति देखकर) अरे इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई पड़ते हैं। हाय न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इसने बुझाया है, अरे न जाने किस नगर को आज इसने अनाथ किया है। हाय रोहिताश्व भी इतना बड़ा हुआ होगा। (बड़े सोच से) हाय-हाय। मेरे मुँह से क्या अमंगल निकल गया। नारायण। (सोचता है)

शैं०—भगवान् विश्वामित्र। आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए। हाय!

ह०—(घबड़ाकर) हाय-हाय। यह क्या? (भली भाँति देख कर रोता हुआ) हाय! अब तक मैं सन्देह ही में पड़ा हूँ? अरे मेरी आँखें कहाँ गई थीं जिनने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहचाना और कान कहाँ गये थे जिनने अब तक महारानी की बोली न सुनी। हा पुत्र। हा लाल। हा सूर्यवंश के अंकुर। हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एक मात्र अवलम्ब। हाय। तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया माँ को छोड़कर कहाँ गये? अरे तुम्हारे कोमल अंगों को क्या हो गया? तुमने क्या खेला क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे? पुत्र, स्वर्ग ऐसा प्यारा था तो मुझसे कहते, मैं अपने बाहुबल से तुझको इसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा देता। अथवा अब इस अभिमान से क्या? भगवान् इस अभिमान का फल यह सब दे रहा है। हाय पुत्र। (रोता है)।

आह! मुझसे बढ़कर और कौन मन्दभाग्य होगा! राज्य गया, धन जन कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊँ? निस्सन्देह मुझसे अधिक अभागा और कौन होगा! जानें हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं जो कुछ हमने आज तक किया वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्सन्देह मैं महा अभागा और पापी हूँ। (रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) प्रलय काल आ गया? नहीं, यह बड़ा भारी असगुन हुआ है, इसका फल कुछ अच्छा नहीं। वा अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा? हा! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूठा

है। (रोता है) हा, सूर्यकुल-आल-बाल-प्रवाल ! हा हरिश्चन्द्र हृदयनाथ ! हा शैव्यावलम्ब ! हा वत्स रोहिताश्व ! हा मातृ-पितृ विपत्ति सहचर ! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़कर कहाँ गये ! आज हम सचमुच चाण्डाल हुए ! लोग कहेंगे कि इसने न जाने कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय। हम संसार को क्या मुँह दिखावेंगे ? (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रकट होने के पहिले ही हम भी प्राण त्याग करें ? हा निर्लज्ज प्राण। तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हा वज्र हृदय। इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता ? अरे नेत्रो ! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो ? या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है। इसके पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने के योग्य डाली खींचकर उससे दुपट्टा बाँधता है) धर्म मैंने अपने जाने सब अच्छा ही किया, परन्तु न जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा सो मुझे क्षमा करना। (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द गोविन्द। यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा। भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राण त्याग करना चाहा। भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण, नारायण, इस इच्छा कृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्वान्तिर्यामी जगदीश्वर, क्षमा करना दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, अब तो मैं चाण्डाल कुल का दास हूँ, न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र। चलूँ अब अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूँ अब दुःखिनी शैव्या क्या करती है ?

(शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)

शै०—(पहली तरह बहुत रोकर) हाय अब मैं क्या करूँ ? अब किसका मुँह देखकर संसार में जाऊँगी ? हाय मैं आज से निपूती भई। पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर मेरी छाया न पड़ने देंगी। हा नित्य सबेरे उठकर अब मैं किस की चिन्ता करूँगी ? खाने के समय मेरी गोद में बैठकर और मुझसे माँग-माँग कर अब कौन खायगा ? मैं परसी थाली सूनी देखकर कैसे प्राण रक्खूँगी ? (रोती) हाय ? खेलते-खेलते आकर मेरे गले से कौन लिपट जायगा ? और मा-मा कहकर तनक-

तनक बातों पर कौन हठ करेगा ? हाय ? मैं अब किसको अपने आँचल से मुँह की धूल पोंछ कर गले लगाऊँगी और किसके अभिमान से विपत में भी फूली-फूली फिरूँगी ? (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी। (छाती पीटकर) हाय प्रान तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हाय मैं ऐसी स्वारथी हूँ कि आत्म-हत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती। नहीं-नहीं, अब मैं न जीऊँगी या तो पेड़ में फांसी लगाकर मर जाऊँगी या गङ्गा में कूद पडूंगी।

(उन्मत्त की भाँति उठकर दौड़ना चाहती है)

ह०—(आड़ में से)

तनहिं बेचि दासी कहवाई।
मरत स्वामि आयसु बिनु पाई॥
करु न अधर्म सोच जिय माहीं।
'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं॥'

शै०—(चौकन्नी होकर) अहा यह किसने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया ? चाहे, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूँ ? हाय देव तुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मर कर भी सुख पाऊँ ? (कुछ धीरज धरकर) तो चलूँ छाती पर बज्र धरके अब लोकरीति करूँ। (रोती और लकड़ी चुनकर चिता बनाती हुई) हाय जिन हाथों से ठोक-ठोक कर रोज सुलाती थी उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रखूंगी। जिसके मुँह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गर्म दूध भी नहीं पिलाया उसे····।

(बहुत ही रोती है)

ह०—धन्य देवी, आखिर तो चन्द्र-सूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज धरोगी तो और कौन धरेगा।

शै०—(चिता बनाकर पुत्र के पास आकर उठाना चाहती है और रोती है।

ह०—तो अब चलें उससे आधा कफन माँगें (आगे बढ़कर और बलपूर्वक आँसुओं को रोककर शैव्या से) महा भागे। श्मशानपति की आज्ञा है

कि आधा कफन दिये बिना कोई मुर्दा फूंकने न पावे सो तुम भी पहले हमें कपड़ा दे दो तब क्रिया करो।

(कफन माँगने को हाथ फैलाता है। आकाश से पुष्प वृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्य महोसत्यमहोदानमहोवलम्।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्व लाकोतरं कृतन्॥

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०—हाय ! इस कुसमय में आर्य्यपुत्र की कौन स्तुति करता है ? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्य्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो। यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखण्ड है।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रखकर) नारायण ! नारायण। महाभागे ऐसा मत कहो। शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ मृत-कम्बल हमें दो और अपना काम प्रारम्भ करो।

(हाथ फैलाता है)

ह०—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवती का चिह्न देख कर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहचान कर) हा आर्य्यपुत्र ! इतने दिन तक कहाँ छिपे थे ? देखो अपने गोद के खिलाए दुलारे पुत्र की दशा। तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व देखो अब अनाथ की भाँति श्मशान में पड़ा है। (रोती है)

ह०—प्रिये धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आ जाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रखकर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हमको दो।

शै०—(रोती हुई) नाथ मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़ कर लपेट लाई हूँ, उसमें से भी जो आधा दे दूंगी। तो यह खुला रह जायगा। चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफन नहीं मिलता। (बहुत रोती है)

ह०—(बलपूर्वक आँसुओं को रोककर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी ! रो मत। ऐसे समय में तो धीरज और धर्म रखना काम है। मैं जिसका दास हूँ उसकी आज्ञा है कि बिना आधा कफन लिए क्रिया मत करने दो। इसमें यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ कर तुमसे इसका आधा कफन न लूँ तो बड़ा अधर्म होगा। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उसका धर्म आध गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफन से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देखकर चित्त में उदास हों। (हाथ फैलाता है)

शैं०—(रोती है) नाथ जो आज्ञा। (रोहिताश्व का मृत-कम्बल फाड़ना चाहती है कि रङ्गभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है, नेपथ्य में बाजे की और बस, धन्य और जय जय की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान नारायण प्रकट होकर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं।)

भ०—बस महाराज बस ! धर्म और सत्य सब की परमावधि हो गई। देखो तुम्हारे पुण्य भय से पृथ्वी बारम्बार काँपती है, अब त्रलोक्य की रक्षा करो। (नेत्रों से आँसू बहते हैं)

ह०—(साष्टाङ्ग दण्डवत् करके रोता हुआ गद्‌गद् स्वर से) भगवान ! मेरे वास्ते आपने परिश्रम किया। कहाँ यह श्मशान भूमि, कहाँ यह मृत्यु-लोक, कहाँ मेरा मनुष्य शरीर, और कहाँ पूर्ण परब्रह्म सच्चिदा-नन्दनघन साक्षात् आप। (प्रेम के आँसुओं से गद्‌गद् कण्ठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)।

भ०—(शैव्या से) पुत्री अब सोच मत कर। धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला है। (रोहिताश्व की ओर देखकर) वत्स रोहिताश्व ! उठो, देखो तुम्हारे माता-पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं।

(रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से भगवान् को प्रणाम

करके माता पिता का मुँह देखने लगता है, आकाश से फिर पुष्प वृष्टि होती है) ।

ह० और शैं०—(आश्चर्य, आनन्द, और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते, आँखों से आँसू बहते हैं और एकटक भगवान् के मुखारबिन्दु की ओर देखते हैं श्री महादेव, पार्वती, भैरव, धर्म, सत्य, इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं[1] ।)

सब—धन्य महाराज हरिचन्द्र, धन्य । जो आपने किया सो किसी ने न किया, न करेगा ।

(राजा हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

वि०—महाराज ! यह केवल चन्द्र सूर्य तक आपकी कीर्ति स्थिर रखने के हेतु मैंने छल किया था, सो क्षमा कीजिये और अपना राज्य लीजिये ।

(हरिश्चन्द्र, भगवान और धर्म का मुँह देखते हैं)

धर्म- महाराज ! राज आपका है, इसका मैं साक्षी हूँ, आप निस्सन्देह लीजिए ।

सत्य ठीक है, जिसने हमारा अस्तित्व संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया उसी का राज है ।

श्री महादेव—पुत्र हरिश्चन्द्र ! भगवान् नारायण के अनुग्रह से ब्रह्मलोक पर्यन्त राज्य तुमने पाया, तथापि मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी कीर्ति जब तक पृथ्वी है तब तक स्थिर रहे और रोहिताश्व दीर्घायु प्रतापी और चक्रवर्ती होगा ।

पा०—पुत्री शैव्या ! तुम्हारे पति के साथ तुम्हारी कीर्ति स्वर्ग की स्त्रियाँ गावें । तुम्हारी पुत्रवधू सौभग्यवती हो और लक्ष्मी तुम्हारे घर का कभी त्याग न करे ।

(हरिश्चन्द्र और शैव्या प्रणाम करते हैं)

---

१. श्री महादेव पार्वती और भैरव का ध्यान सबको विदित है । इन्द्र और विश्वामित्र को लिख चुके हैं । धर्म चतुर्भुज, श्याम रंग, पीताम्बर, दण्डपत्र और कमल हाथ में । सत्य शुल्कवर्ण श्वेत वस्त्राभरण, नारायण के चारों शस्त्र हाथ में ।

भै०—और जो तुम्हारी कीर्ति कहे सुने और उसका अनुकरण करे उसको भैरवी यातना न हो।

इन्द्र—(राजा को आलिङ्गन करके और हाथ जोड़ के) महाराज मुझे क्षमा कीजिये यह सब मेरी दुष्टता थी। परन्तु इस बात से आपका तो कल्याण ही हुआ। स्वर्ग कौन कहे। आपने अपने सत्यबल से ब्रह्मपद पाया। देखिये, आपकी रक्षा के हेतु श्री शिवजी ने भैरवनाथ को आज्ञा दी थी, आप उपाध्याय बने थे नारदजी बटुक बने थे, साक्षात् धर्म ने आपके हेतु कापालिक का भेष लिया और सत्य ने आपही के कारण चाण्डाल के अनुचर और बैताल का रूप धारण किया। न आप बिके न दास हुए, यह सब चरित्र भगवान् नारायण की इच्छा से केवल आपके सुयश के हेतु किया गया।

ह०—(गद्गद् स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ाने वाला और कौन है?

भ०—महाराज! और भी जो इच्छा हो माँगो।

ह०—(प्रणाम करके गद्गद् स्वर से) प्रभू आपके दर्शन से सब इच्छा पूर्ण हो गई, तथापि आपकी आज्ञानुसार यह वर माँगता हूँ कि मेरी प्रजा भी मेरे साथ बैकुण्ठ जाय और सत्य सदा पृथ्वी पर स्थिर रहे।

भ०—एवमस्तु, तुम ऐसे ही पुण्यात्मा हो कि तुम्हारे कारण अयोध्या के कीट पतंग, जीव मात्र सब परम धाम जायेंगे, और कलियुग में धर्म के सब चरण टूट जायेंगे, तब भी वह तुम्हारी इच्छानुसार सत्य मात्र एक पद से स्थिर रहेगा। इतना ही देकर मुझे सन्तोष नहीं हुआ। कुछ और भी माँगों। मैं तुम्हें क्या-क्या दूँ? क्योंकि मैं तो अपने ही को तुम्हें दे चुका। तथापि मेरी इच्छा यही है कि तुमको कुछ और वर दूँ तुम्हें वर देने में मुझे सन्तोष नहीं होता।

ह०—(हाथ जोड़कर) भगवान्! मुझे अब कौन इच्छा है? मैं और क्या वर माँगू तथापि भरत का यह वाक्य सफल हो—

"खल जनन सों सज्जन दुखी मत होंइ, हरिपद रत रहै।
उपधर्म छूटें, सत्य निज भारत गहै, कर-दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि, नर सम होंहि, सब जग सुख लहै।
तजि ग्राम कविता सुकविजन की, अमृतवानी सब कहै॥"

(पुष्पवृष्टि और बाजे की धुनि के साथ जबनिका गिरती है)

सत्य हरिश्चन्द्र : टिप्पणियाँ

मंगलाचरण—रचना की निर्विघ्न तथा सुखद-समाप्ति के हेतु रचयिता द्वारा जो मंगल-पाठ किया जाता है, उसे मंगलाचरण कहते हैं। यह प्रथा वर्तमान नाटकों में भी कहीं-कहीं पाई जाती है।

सत्यासक्त.........हरिश्चन्द्र—इस दोहे में पाँच व्यक्तियों का वर्णन है। शिवजी, राजा हरिश्चन्द्र, श्रीकृष्ण, चन्द्रमा और कवि भारतेन्दु। उसका अर्थ निम्न प्रकार से होगा :—

शिवजी के पक्ष में

सत्यासक्त=सती में आसक्त, सती से प्रेम करने वाले। द्विजप्रिय=जिनको दो बार जन्म लेने वाला (चन्द्रमा अथवा गणेश) प्रिय है। अघहर=पापों का नाश करने वाले। कमला तजन=ऐश्वर्य (लक्ष्मी) का भी त्याग करने वाले।

भावार्थ—जो पार्वती (सती) से प्रेम करने वाले हैं, जिनको चन्द्रमा अथवा गणेश जी प्रिय हैं। जो दयालु हैं, सबको अच्छे लगते हैं, पापों का नाश करने वाले हैं और जिन्होंने विश्व के कल्याण के लिए ऐश्वर्य को भी छोड़ दिया, उन शिवजी की जय हो।

राजा हरिश्चन्द्र के पक्ष में

सत्यासक्त=सत्यवादी, सत्य में आसक्त। द्विजप्रिय=जिनको ब्राह्मण प्रिय हैं। अघहर=पाप को भगाने वाला। जन=प्रजा। कमला=धन। तजन=त्यागना।

भावार्थ—जो सत्यवादी हैं, दयालु और ब्राह्मणों का प्रेमी है, (पापियों को दण्ड देकर) पाप दूर करने वाला है, सुख देने वाला है और जनता की भलाई के लिए राज्य-धन को भी छोड़ देने वाला है उस राजा हरिश्चन्द्र की जय हो।

श्रीकृष्ण के पक्ष में

सत्यासक्त=सत्य अर्थात् सत्यभाव के प्रेमी। द्विजप्रिय=जिनको ब्राह्मण प्रिय हैं। अघहर=पापों को हरने वाले। जन=भक्त लोग। कमला=लक्ष्मी। तजन=छोड़ना।

भावार्थ—जो सत्यभामा के प्रेमी हैं, दयालु हैं, ब्राह्मण जिनको प्रिय हैं अथवा द्विज लोग जिनको प्रेम करते हैं, जो पापों को दूर करने वाले हैं सुख देने वाले हैं और भक्तों के लिए लक्ष्मी को छोड़ने वाले हैं, उन श्रीकृष्ण चन्द्र की जय हो।

चन्द्रमा के पक्ष में

सत्यासक्त=सती में आसक्त, तारा सता में आसक्त। द्विजप्रिय=ब्राह्मणों को प्रिय। द्विज=दो बार जन्म लेने वाला। प्रिय=अच्छा लगने वाला। अघहर=पाप नाशक। कमला=चाँदनी। तजन=छोड़ना, देने वाला।

भावार्थ—जो तारा (सती) से प्रेम करने वाला है, दयालु ब्राह्मणों को प्रिय है अथवा जिसका जन्म दो बार हुआ है, कष्टों को दूर करने वाला है, सुख देने वाला है, समस्त संसार को चाँदनी देता है उस चन्द्रमा की जय हो।

चन्द्रमा, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, दाँत और गणेश सब ही द्विज कहे जाते हैं। राहु के ग्रस लेने के पश्चात् चन्द्रमा का जन्म दुबारा हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जनेऊ हो जाने के बाद द्विज माने जाते हैं और तब इनका दूसरा जन्म माना जाता है। दाँत भी पहली बार दूध के निकलते हैं, दूसरी बार आते हैं तब पक्के होते हैं। गणेश जी का जन्म भी दुबारा हुआ है। कहा जाता है कि पार्वती जी स्नान कर रही थीं तो उन्होंने द्वार की रक्षा के लिए एक पुतला बनाकर दरवाजे पर रख दिया। संयोग से उसी समय शिवजी आ गये। सती के प्रताप से पुतले में प्राण आ गये और उसने शंकर जी को भीतर जाने से रोका शिवजी ने उसका सिर काट लिया। पार्वतीजी ने जब यह सब सुना तो उनको बड़ा शोक हुआ। उनको प्रसन्न करने के लिए शिवजी ने विचार किया। एक हथिनी अपने बालक को पीठ देकर सो रही थी। शंकर जी ने चुपके से उसका सिर काट लिया और पुतले पर लाकर लगा दिया। इस प्रकार गणेश का जन्म दूसरी बार हुआ। तभी से यह भी कहा जाता है कि माता को अपने बालक को पीठ देकर नहीं सोना चाहिए।

कवि के पक्ष में

सत्यासक्त=सत्यावादी। द्विजप्रिय=जिनको ब्राह्मण तथा गणेशजी प्रिय हैं। अघहर=पाप दूर करने वाले। जनहित=परोपकार के हेतु। कमला तजन=धन का व्यय करने वाले।

भावार्थ—सत्यवादी, दयालु, गणेश अथवा ब्राह्मणों को प्रेम करने वाले पाप हरने वाले, आनन्द के देने वाले, परोपकार के हेतु धन का त्याग करने वाले हरिश्चन्द्र की जय हो।

कविता में विघ्न दूर करने के हेतु गणेश की वंदना की जाती है और कविता के द्वारा पाप-ताप भी दूर होते हैं! द्विजप्रिय से यहाँ तात्पर्य 'भारतेन्दु' भी लिया जा सकता है जिन्हें हरिश्चन्द्रजी की उपाधि थी। वे चन्द्रमा के समान सबको प्रिय हैं ऐसा भी अर्थ हो सकता है बाबू हरिश्चन्द्र का कहना था कि इस दौलत ने मेरे पुरखों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा। वे बड़े दानी और परोपकारी थे।

इस छन्द का नाम दोहा है। इसमें श्लेष, अनुप्रास तथा मुद्रा आदि अलंकार भी हैं।

नान्दी—नाटक के आरम्भ में सब विघ्नों की शान्ति के लिए देवता, ब्राह्मण तथा राजा आदि की जो स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं। इस नाटक में भी संस्कृत ग्रन्थों के आधार पर ही नान्दी का प्रयोग किया है।

सूत्रधार—नाटक मैंनेजर को सूत्रधार कहते हैं। यह नाटक के अभिनय का सारा प्रबन्ध करता है। कुछ लोगों का कहना है कि इसका नाम कठपुतलियों के नाच से हुआ है। डोरी से कठपुतलियाँ नचाने वाले को सूत्र-धार कहते हैं।

धन्य=सुख देने वाली। गुणज्ञ=गुणवान् रसिक=प्रेमी। प्रवृत्त हुई=झुके तो सही।

अंध परम्परा=पुरानी रीति। बेपरवाह=चिन्ता रहित। गाल-बजाना=झूठ बोलना। कौतुक=तमाशा।

नेपथ्य—रंगभूमि के उस भीतरी हिस्से को कहा जाता है जहाँ पर नाटक के पात्र वेष सजाते हैं।

बखेड़ा=झंझट। नटी=अभिनय करने वाली। मनिहारिन=चूड़ी बेचने वाली स्त्री। सावधान=होशियार, चेतावनी। मँज रहा है=तयार है, कर सकते हैं। आख्यान=कथा या कहानी। करुणापूर्ण=शोकमय।

नीर—आँसू कहेंगे…………रहि जायगी=बाद में सभी लोग अपनी आँखों में आँसू भर भर के हरिश्चन्द्र के बारे में बातें करेंगे। उस समय उनका नाम ही रह जायगा उसी को याद करेंगे।

मान=प्रतिष्ठा। हरिश्चन्द्र=भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। रैन=रात्रि। हरिचन्द्र=सूर्य और चन्द्रमा।

भावार्थ—जिस तरह प्राकृतिक नियमों के अनुसार दिन रात के स्वाभाविक कारण सूर्य और चन्द्र हैं, उसी प्रकार सभी सज्जनों से मान का एकमात्र कारण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। क्योंकि वे रसज्ञ हैं और गुणी हैं। यमक अलङ्कार।

समता=समानता, बराबरी।

जगहित=संसार का कल्याण। सुनियत=सुने जाते थे। प्रतच्छ=प्रत्यक्ष। लखहु=देखो।

जो गुन…………प्रतच्छसुजान।

भावार्थ—संसार के कल्याण के लिए जो भी गुण राजा हरिश्चन्द्र में सुने जाते थे वे ही गुण कवि हरिश्चन्द्र में प्रत्यक्ष देखने में आते हैं। अलंकार—निदर्शना।

सुरलोक=इन्द्रपुरी। दूजो=दूसरा। उर=हृदय, मन।

भावार्थ—यहाँ पर तो एक ही राजा हरिश्चन्द्र की सत्यता के भय से इन्द्रलोक काँपता था यह दूसरा हरिश्चन्द्र इन्द्र के हृदय को व्याकुल करता है सो कौन है ? उदात्त अलंकार इन्द्र सभी तपसी महात्माओं से भयभीत रहता है कि ये मेरा इन्द्रासन न ले लें।

प्रथम अंक

अङ्क—नाटक के एक भाग को अंक कहते हैं। अङ्क ५ से १० तक होते हैं जिस प्रकार अन्य ग्रन्थों में खण्डों के नाम काण्ड और अध्याय आदि होते हैं, उसी प्रकार नाटक में भागों के नाम अङ्क होते हैं।

जवनिका=बाहरी पर्दा, चिक। रङ्गभूमि के सामने द्वार पर जो परदा पड़ा रहता है उसे जवनिका कहते हैं। कुछ लोग इसे यूनानी मानते हैं, परन्तु यह संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ है छिपना।

नारद जी को प्रसिद्ध ऋषि दक्ष प्रजापति ने शाप दे दिया था। शाप के कारण ये किसी जगह पर भी दो घड़ी से अधिक नहीं ठहर सकते थे। इन्होंने भक्ति सूत्र भी लिखे हैं। भक्तराज कहे जाते हैं। इन्द्र=देवताओं के राजा। द्वारपाल=पहरेदार। अवसर=समय।

साधु·······परोपकारी होते हैं=दूसरों की भलाई करना भले आदमियों का स्वभाव है।

कामकाजी=काम में लगे हुए, गृहस्थी। साधु समागम=सत्संग। दुर्लभ=कठिन। शिष्टाचार=भले लोगों का आचार, तकल्लुफ। सोहता—अच्छा लगता। मुँह देखा व्यापार=सामने के अनुकूल बर्ताव पीछे कुछ न हो। निष्कपट=निश्छल स्वाभाविक=शुद्ध अकृत्रिम।

कुछ लोग तकल्लुफ को शराफत मानते हैं तो कुछ मूर्खता। आधिक्य दोनों ही बातों का बुरा है। ससुराल में तकल्लुफ अच्छा लगता है; मित्रों में बुरा लगता है।

यद्यपि इसी····हरिश्चन्द्र ही है। इसमें शंका नहीं है कि इसी सूर्य वंश में बहुत से धर्मात्मा राजा हुए हैं परन्तु राजा हरिश्चन्द्र के समान दूसरा कोई भी नहीं हुआ, अर्थात् हरिश्चन्द्र चन्द्र और सूर्य के समान प्रख्यात हैं।

गुण गाते हैं—प्रशंसा करते हैं।

····सत्यमृत है=बड़ा सत्यवादी है। हीनावस्था=बुरी दशा। गुण-ग्राही=गुणज्ञ। उत्ककीर्ति=बहुगौरव। ईर्ष्या=जलन। पदाधिकारी=पद पर बैठे हुए व्यक्ति। संताप=दुःख। संपत्ति=धन, दौलत। कीर्ति=यश। दृढ़ होकर=मजबूत होकर। प्रमाण=सबूत। बुरा मानते हैं=ईर्ष्या करते हैं, जलते हैं। गृह चरित्र=व्यवहार जो घर में किया जाय। लोगों का चलन घर में कुछ बाहर कुछ होता है।

उदाहरण बनाने योग्य=दूसरों के लिए आदर्श। चरित्र=चाल-चलन। उपदेशक=शिक्षा देने वाला। धर्मनिष्ठ=धर्मात्मा। टकसाल=प्रामाणिक, सच्चा।

महात्मा=ऊँचे विचारों वाला। दुरात्मा=बुरे विचारों वाला। विद्यानुरागिता=विद्या का प्रेम। उपकार प्रियता=दूसरों के प्रति उपकार करने में स्नेह। सहज=स्वाभाविक। अधिकार में क्षमा=जो बलवान होने पर भी क्षमा करता है। धैर्य=धीरज। अनभिमान=अभिमान न करना। स्थिरता=दृढ़ता। ईश्वर की सृष्टि का रत्न=विश्व में सर्वश्रेष्ठ। उसी की माता पुत्रवती है=उसी माता का पुत्र प्रसव करना सफलीभूत है। निश्चला=अचल। भूषण=यश बढ़ाने वाली। दृढ़=मजबूत। महारम्भ=बहुत बड़ा। अवकाश=समय। व्याकुलता=घबराहट। यथायोग्य=ठीक तरह से।

लक्ष्मी=धन। पात्र=उचित, अधिकारी। क्षय=नाश। याचक=भिक्षुक। हैसियत=सीमा अधिकार।

यदि हमारा कोई अपमान करे और हम निर्बल होने के कारण उसे क्षमा कर दें तो यह कायर की क्षमा है परन्तु दण्ड देने की सामर्थ्य होते हुए भी यदि अपराधी को क्षमा करदें तो यही क्षमा 'वीर का भूषण' कही जायगी।

सर्वस्वहानि=सब कुछ नष्ट हो जाना। कोश=धन का भंडार। मूल=जड़। उभय संकट=दोनों ओर की आपत्ति।

परिहास=हँसी। निन्दा=बुराई। अभिमान वचन=जिसके द्वारा वह अपना स्वाभिमान स्पष्ट करता है।

"चन्द्रटरै····सत्य विचार"।

चन्द्रमा और सूर्य अपने स्थान से दूर चले जायँ, चाहे तो इस विश्व के सभी कार्यों में परिवर्तन हो जाय; परन्तु दृढ़व्रती हरिश्चन्द्र का सत्य-संकल्प कभी टल नहीं सकता है।

निर्मल=पवित्र, निर्दोष। चरणारविन्द=चरण रूपी कमल। कामना=अभिलाषा। क्षुद्रता=छोटापन। शुभ अनुष्ठानों=शुभकार्यों। असीम=सीमा रहित महातुच्छ राज्य।

क्षुद्राशय=लघु, नीच। महाशय=श्रेष्ठ, वड़े। अधिकार=पद। आदरणीय=आदर के योग्य। विश्वामित्र=एक मुनि।

रुष्टता=नाराजी । बाधक=रोकने वाले । तपाये=गर्म किए । रूखापन=नीरसता ।

जली कटी=टेढ़ी, खरी-खोटी । प्रसंग निकला था=बात आ गई थी, जिक्र हुआ था । सतत्तु=प्रशंसा ।

तारीफ परकीर्ति=दूसरे की प्रशंसा । संदेह=शंका । भृकुटी=भौंहें । भ्रूभंग=त्यौरी का बदलना । सिपारसी=खुशामदी । तेजोभ्रष्ट=क्षात्रधर्म से विमुख, तेजहीन ।

दूसरा अङ्क

सहेली=सखी । अंग=शरीर । युग युग=बहुत वर्षों । सोहाग=सौभाग्य । शान्ति=अशुभ को दूर करने । पसारना=फैलाना । आँचल पसारना=दीनतापूर्वक पल्ले को फैलाना, भगवान् से कुशल की भिक्षा माँगना । वरदान=कामना की पूर्ति ।

स्वस्त्यस्तु=मंगल हो । तेकुशलमस्तु=तुम्हारा भला हो । चिरायुस्तु=दीर्घायु हो । गो=गौ । बाजि=घोड़ा । हस्ति=हाथी । समृद्धि=बढ़ती । रिपुक्षयास्तु=शत्रु का नाश हो ।

श्लोक का भावार्थ—आपका कल्याण हो, कुशल हो और आप दीर्घायु हों । गौ, घोड़े और हाथी; धन-धान्य की वृद्धि हो, ऐश्वर्य हो, भला हो और शत्रुओं का नाश हो तथा सन्तान की वृद्धि के साथ ही आप में ईश्वर की भक्ति भी बढ़े ।

यह छन्द वसन्ततिलका है ।

अभिमन्त्रित=मन्त्रों से शुद्ध किया हुआ । पिव=पीना । रक्षा-बन्धन=राखी, रक्षा के लिए बाँधा जाने वाला डोरा । मार्जन=पानी के छींटे देना । दूर्बा=दूब । अभिषिचन्तु=कर्म के अन्त में शान्ति के लिए स्नान करावें । रक्षाकुर्वन्त=रक्षा करें । गन्धर्व=एक प्रकार के देवता । किन्नर=एक प्रकार के देवता ।

श्लोक का भावार्थ—ब्रह्मा, विष्णु और महेश आपका अभिषेक करें और गन्धर्व, किन्नर और नाग सदा आपकी रक्षा करें ।

पितर=मरे हुए पुरखे या पितृ जिनका श्राद्ध किया जाता है। गुह्यक=वे देवता जो कुवेर के भण्डार की रक्षा करते हैं। यक्ष=एक प्रकार के देवता।

प्रसीदतु=प्रसन्न होवे। शरदांशतम्=सौ वर्ष।

श्लोक का भावार्थ—पितर, गुह्यक, यक्ष, देवता, भूत और मातृकाएँ आदि सब देवता तुम्हारा अभिषेक करें और सदैव तुम्हारी रक्षा करें। मंगल हो, कल्याण हो, महालक्ष्मी प्रसन्न हों और हे सती ? तुम पति पुत्र के साथ सौ वर्ष तक जीवित रहो। जो कुछ पाप रोग और अशुभ बातें हों वे सभी नष्ट हो जायँ और तुम्हारे पास न आने पावें। जितने मंगल हैं शुभ सौभाग्य है, धन-धान्य है, स्वास्थ्य और सन्तान की प्राप्ति हैं, वह सभी भगवान की कृपा और ब्राह्मण के आशीर्वाद से तुमको प्राप्त हों।

अक्षत=चावल। वैतालिक=स्तुति पाठ करने वाले। प्रकटहु=उदय। होइए=दर्शन। रविकुल रवि=सूर्यवंश के सूर्य, हरिश्चन्द्र। निसि-रात। प्रजा कमलगन=प्रजा रूपी कमल समूह। मन्द-फीके। रिपुगन=शत्रु लोग। तम=अन्धकार। उनमूले=नष्ट हो गये। नसे=नष्ट हो गये। लम्पट=दुष्ट, व्यभिचारी। खल=दुष्ट। लखि=देख कर। मागध=बन्दी, भाट, चारण। बन्दी=लड़ाई में वीरों को उत्तेजित करने वाला। कलरोर=चहचहाना, सुन्दर शब्द। पौन=वायु। जस=कीर्त्ति। परसि=छूकर। चटकीं=खिल गई। असीस=आशीर्वाद। अलियाँ=सखियाँ।

थित=स्थित। लीन=लगना। द्विजजन=द्विजन्मा ब्राह्मणादिक। रिपु-युवती-मुख-कुमुद-मन्द=शत्रुओं की नारियों के मुख कुमुदिनी की भाँति तेजहीन पड़ गये। चक्रवाक=चकवा-चकई। अरघ=पुष्प चन्दन और अक्षत जो पूजा के हेतु दिया जाता है। उपहार=भेंट। सरिस=समान। तोखौ=सन्तुष्ट करो। पोखौ=पालन करो।

प्रकटहु रविकुल·······परसि कर पोखौ"

इस पद्य में रविकुल का सूर्य बतलाकर जितनी भी बातें सूर्य के सम्बन्ध में कही गई हैं वे सभी महाराज हरिश्चन्द्र के विषय में लगाई जायेंगी अर्थात् एक अर्थ केवल सूर्य के विषय में हो सकता है तो दूसरा हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में।

हे सूर्यवंश के सूर्य (राजा हरिश्चन्द्र) रात्रि समाप्त हो गई है, अब आप बाहर आकर दर्शन दीजिये, प्रजा रूपी कमलों का समूह खिल रहा है। आपके शत्रु लोग तारों के समान ज्योतिहीन हो गये हैं और मनुष्यों का भयरूपी अंधेरा दूर हो गया है। संसार में आपके प्रताप के प्रकाश से चोर, व्यभिचारी और दुष्ट लोगों का विनाश हो गया है। मागध, बन्दी सूत रूपी चिड़ियों ने मिलकर मंगल-गान गाना आरम्भ कर दिया है। आपकी सुयशरूपी शीतल हवा का स्पर्श पाकर गुलाब की कलियाँ चटकने लगी हैं अर्थात् वे खिलने लगी हैं, ऐसा जान पड़ता है मानो सखियाँ प्रसन्न हो-हो कर ताली बजा-बजा-कर आपको आशीर्वाद दे रही हैं। सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने-अपने कार्य में लग गये हैं और प्रजा के लोग अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। आपके शत्रुओं की नारियों के मुखरूपी कुमुद मुरझा गये हैं (कुमुदनी रात को खिलती है दिन में मुरझा जाती है) और आपके सेवकरूपी चकवे प्रसन्न हो रहे हैं (चकवा रात को विरह में दुखी होता है और दिन में चकवी से मिलन के कारण प्रसन्न होता है)। अर्घ्य लिये हुए राजा लोग सेवा में खड़े हैं उनको सन्तोष प्रदान कीजिए और न्याय तथा कृपा से ऊँच और नीच सभी को बराबर मानकर, उन पर हाथ रखिये (किरणों का दान दीजिये) और सभी का पालन-पोषण कीजिये।

धुनि=ध्वनि; आवाज। परिकर=समाज, मुसाहिब। मलिन=गंदा, उदास। दुःस्वप्न=बुरा सपना। भीरु=डरपोक। वीर-कन्या=वीर की पुत्री। वीर माता=वीर पुरुष की माँ। वीर पत्नी=वीर की स्त्री।

निरी=केवल। शुभाशुभ का विचार=अच्छे और बुरे का सोच। महाविद्या=तंत्र में मानी हुई सिद्ध विद्याएँ। नाट्य करना=अभिनय करना। थाती=धरोहर। सौंपना=देना। व्यवहार=काम। अर्द्धाङ्गिनी=धर्मपत्नी, आधे अङ्ग की स्वामिनी। प्रत्यक्ष=सामने, होश में।

डौंडी पिटवा दो=मुनादी करा दो, डुग्गी पिटवा दो। अज्ञात नाम गोत्र=जिसका नाम और गोत्र मालूम नहीं है। अभाव=अनुपस्थिति। कार्याधीश=आफीसर। पूर्व परिचित=पहले से जाने हुए। ज्ञात=जानती, मालूम।

क्षत्रियाधम=क्षत्रियों में नीच। सूर्यकुल कलङ्क=सूर्य वंश का धब्बा। मिथ्या=झूठा। ग्रहण=स्वीकार करना वशिष्ठ सुतकानन धूमकेतु= वशिष्ठ के पुत्रों के लिए जंगल की आग के समान। सर्गान्तर=दूसरी दुनिया। कृतान्त=यम। अवैषि=जानो।

श्लोक का अर्थ है—(मैंने क्षत्रिय होकर) भी स्वयं ब्राह्मण जाति स्वीकार की उसी कारण बुरा व्यवहार करने वाले वशिष्ठ के पुत्रों रूपी जंगल के लिए मैं अग्नि के समान हुआ नई सृष्टि बनाने के कारण भयभीत संसार के लिए यम के समान हुआ और मैंने चाण्डाल रूप त्रिशंकु को भी यज्ञ कराया तू मुझे, विश्वामित्र को नहीं जानता ? (धूमकेतु एक तारा भी होता है जिसका प्रभाव बहुत बुरा माना जाता है।)

प्रतिग्रह—दान। राजप्रतिग्रह पराङ्मुख=राजाओं से दान लेने के विरुक्त। आड़ी=वशिष्ठ। बक=विश्वामित्र।

श्लोक का अर्थ—है ! आप तो अनक्षय अर्थात् अकाल के दिनों में चाण्डाल से लेकर अपना जीवन रखने वाले हैं, राजाओं से दान न स्वीकार करने वाले हैं, वशिष्ठ और विश्वामित्र के युद्ध से संसार को कंपा देने वाले, तेज और तप के निधान हैं आपको कौन नहीं जानता।

वशिष्ठ और विश्वामित्र का युद्ध प्रसिद्ध है। वशिष्ठ विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि नहीं मानते थे यही युद्ध का मूल कारण था। इसमें वशिष्ठ गिद्ध (आड) बनकर लड़े और विश्वामित्र बगुला (बक) बन गये थे। राजा हरिश्चन्द्र ने 'राजप्रतिग्रह-पराङ्मुख' कह कर विश्वामित्र की प्रशंसा की कि आपने राज्य को भी छोड़ दिया परन्तु विश्वामित्र ने इसका दूसरा ही, स्वार्थ परायणता से पूर्ण अर्थ लिया कि मुझे त्यागी बनाकर मुझे ही दान किया हुआ राज्य हरिश्चन्द्र वापस चाहता है।

जातिस्मरण=क्षत्रिय हूँ ऐसा स्मरण होने से। कृपाण=तलवार। दीर्घतपोवर्द्धित=बहुत काल तक तप करके जिसे बढ़ाया है वह विश्व। असह्य=न सहे जाने योग्य ; गर्व=मान। चूर्ण=नष्ट। सृष्टि=दुनिया।

राजकुलांगार=राज्य वंश में अग्नि के समान। इस बुद्धि से=इस मतलब से। अहंकार=गर्व। क्षुद्र=छोटा, नीच, लघु। ईषत क्रोध=थोड़े गुस्से से।

"चन्द्र टरै·······विचार"

चन्द्रमा, सूर्य चाहे अपने स्थान से हट जायें अथवा संसार का व्यवहार ही क्यों न बदल जाय परन्तु श्री हरिश्चन्द्र का दृढ़ निश्चय कभी नहीं बदल सकता है।

अनादर=अपमान। विलम्ब=देर। इक्ष्वाकु=सूर्यवंश के पुरखा, राजा इक्ष्वाकु। रविकुल=सूर्यवंश। वसुधे=हे पृथ्वी। धरम बद्ध=धर्म से बँधा हुआ।

पद्य का भावार्थ—जिस पृथ्वी को इक्ष्वाकु से लेकर अब सूर्यवंश के कितने ही राजाओं ने पाला है, उसी को आज राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को दे रहा है ॥१॥ हे पृथ्वी! हमारे पुरखाओं की होकर तुमने बहुत सुख किया है परन्तु अब धर्म से बँधे हुए (प्रतिज्ञाबद्ध) हरिश्चन्द्र को तुम क्षमा प्रदान करना ॥२॥

सत्य-भ्रष्ट=सत्यता से गिरा हुआ। स्वस्ति=कल्याण हो। स्वर्णमुद्रा=सोने की मोहरें।

क्षमा=माफ। ब्रह्मदंड=ब्राह्मण के द्वारा दी गई सजा। अवधि=मोहलत, मियाद। सुअन=लड़का। मन्द=नीच।

दोहे का भावार्थ—स्वाभिमानी हरिश्चन्द्र अपना शरीर अपनी स्त्री और अपने पुत्र को वेचकर भी तथा नीच का दास होकर भी अपने वचन को सत्य सिद्ध करके रहेगा।

तीसरे अङ्क में अङ्कावतार

नाटक के किसी अंक के अन्त में आगामी अंक के आरम्भ की सूचना जो पात्रों द्वारा दी जाय उस आरम्भ के भाग को अङ्कावतार कहते हैं।

"पृथ्वी हरिश्चन्द के·······पवित्र हो रही है"—संसार में जो भी पवित्रता है वह मानो राजा हरिश्चन्द की सत्यता और पुण्य-प्रताप चारों ओर फैल रहा है।

वाराणसी=काशी। प्रांत=देश। उऋण=बेबाक, चुकता। उत्पात=झगड़ा। होम=यज्ञ। घनघोर=बहुत शोर।

ध्वनि=आवाज। शि शि शि=शिव शिव शिव। गति भई=मुक्ति भई। येषां....गति=जिसको कहीं भी मुक्ति नहीं मिल सके उसे काशी में ही मुक्ति मिल जाती है काशी अशरण-शरण है। भभूत=राख, भस्म। ठिकाना लगाना कठिन है=कुछ प्रबन्ध नहीं हो सकता है, असम्भवता। भूतनाथ=शिव। भवानी=पार्वती।

अलक्ष=गुप्त भाव से। प्रवृत्त होऊँ=काम में लगूँ। अंगरक्षा=शरीर की रक्षा।

तीसरा अंक

चारों आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास। चारों वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। बसैं=रहते हैं। मनि=रत्न। कंचन=सोना। धाम=महल। अकास विभासिका=आकाश में शोभायमान। विधनैं=ब्रह्मा। पुरीन की नासिका=सब पुरियों की नाक (सर्वश्रेष्ठ) गिरधारनजु कवि का नाम। देव-नदी=गङ्गा। वर-बारि-विलासिका=सुन्दर जल मे लहराने वाली। पुण्य प्रकासिका=पुण्य का प्रकाश करने वाली। पाप-विनासिका=पाप का नाश करने वाली। हीय-हुलासिका=हृदय को हर्षित करने वाली। कासिका=काशी।

पद्य का भावार्थ—इस (काशी) में चारों आश्रम हैं, और चारों वर्णों के मनुष्य भी रहते हैं। मणि और सोने से बने हुए प्रासाद ऊँचे होने से आकाश तक चमक रहे हैं। इसकी शोभा का वर्णन शक्ति से बाहर है। ब्रह्मा ने इसे सातों पुरियों से सुन्दर बनाया है। गिरिधरदास कवि कहते हैं कि यह पवित्र जल से तरंगित गङ्गा के किनारे स्थित है। यह पुण्य को बढ़ाती है, पाप को नष्ट करती है, हृदय को हर्षित करती है और बड़ी शोभित हो रही है। छन्द अरसात सवैया है। उसमें सात भगण और एक रगण होता है।

बिंदुमाधव बिसेसरादि=बिंदुमाधव विश्वनाथ आदि, काशी में स्थापित मूर्त्तियों के नाम। जम-मुख=यमराज का मुख। मसी=कालापन। अनादि=आरम्भ हीन, बहुत प्राचीन। पंच गङ्गा=मनिकर्निका आदि काशी के तीर्थ स्थानों के नाम। आवरण मध्य=घरों के बीच में। धसी है=बसी है। भागीरथी=गङ्गा। आसु=शीघ्र। तोरैं=तोड़ती हैं। कर्म रूपी रस्सी=कर्म रूपी रस्सियाँ, बन्धन। ससी=चन्द्रमा। जसी=यशस्वी। असीवरना=

काशी की छोटी नदियों के नाम। पाप खसी हेतु=पाप रूपी बकरे के हेतु। असी=तलवार। लसी=शोभायुक्त।

भावार्थ—विन्दुमाधव और विश्वेवर आदि सब देवता इसमें (काशी में) रहते हैं, जिनके दर्शनमात्र से ही यमराज के मुँह में स्याही पुत जाती है। पंच गङ्गा और मणिकर्णिका आदि सात तीर्थ हैं, मानों यही सात घेरे हैं जिनके बीच में काशी पुण्य रूपी नगरी बसी हुई है। गिरधरदास कहते हैं कि इसके पास ही गंगाजी शोभित हैं, जिनकी धाराएँ कर्म रूपी बन्धनों को तत्काल छिन्न-भिन्न करती हैं। चन्द्रमा के समान अचल यश वाली और वरणा तथा असी नामक नदियों के बीच में काशी बसी हुई है जो पाप रूपी बकरे के लिए तलवार के समान है। छन्द मनहरण कवित्त है।

रचित=बनाई हुई। प्रभासी=प्रकाश। भासी=चमकती है। अवलि=कतार, श्रेणी। अकासी=मकान का सबसे ऊपरला भाग। गृह=गृहस्थ। फबैं=शोभा देती है। रतन नकाशी=जवाहिरात की पच्चीकारी। वर=सुन्दर। गुण रास=गुण की खान। देवपुरीहू=इन्द्रपुरी भी। विश्वकीरति विलासी=संसार में यश फैलाने वाली। रमा हासी लौं लक्ष्मी की हँसी के समान।

उजासी=उजाला। जगतहुलासी=संसार को प्रसन्न करने वाली है। हुलासी=इक्षा। खासी=पूरी। परकासी=प्रकाशित, प्रभावान। पुनवासी चन्द्रिकासी=पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान। अविनासी=जिसका नाश न हो। अघनासी=पाप का नाश करने वाली।

भावार्थ—(काशी के) भवनों की श्रेणियाँ ऐसी दिखाई देती हैं, मानों वह ज्योति (कान्ति) से बनी हैं। इन मकानों के ऊपर जवाहिरातों की पच्चीकारी बहुत ही भली मालूम होती है। इसमें नौकर और नौकरानियाँ इधर-उधर घूम रहे हैं। ब्राह्मण, गृहस्थ और संन्यासी दिखाई देते हैं। (इन्हीं कारणों से) इन्द्रलोक भी इतना सुन्दर नहीं है। गिरधरदास कवि कहते हैं कि यह संसार में अपने यश का विस्तार करती है, लक्ष्मी की हँसी के समान संसार को उज्वल आनन्द देने वाली है। यह पूर्णिमा की चाँदनी के समान प्रकाशवान है। यहाँ के निवासी अविनाशी शिव हैं। यह काशी पापों का नाश करने वाली है।

त्रास=भय। पाप प्रतापहि=पाप का प्रभाव। दूर दरयो=दूर हटा दिया। अनंग=कामदेव। नेकु=थोड़ा। विरचे=बनाये। गिरि-धारन=कृष्ण, कवि का नाम। धारन में=स्नान करने में।

भावार्थ—गिरधरदास कवि कहते हैं कि हे गंगे! केवल मुँह से तुम्हारे नाम का उच्चारण करने से ही यम का भय नष्ट हो जाता है अर्थात् मृत्यु का भय जाता रहता है। तुम्हारे दर्शन करने से ही पाप का प्रभाव नष्ट हो जाता है। तुम्हारे जल को तनिक सा भी मुँह में डालने से व्यक्ति महादेव बन जाता है। तुमने अपनी धारा में स्नान करने से न जाने कितनों को तुमने विष्णु बना दिया है अथवा अपनी लहरों से कृष्ण पैदा किये हैं ॥४॥

छन्द दुर्मिल सवैया है। इसमें आठ सगण होते हैं।

नव=नई। उज्वल=सफेद, श्वेत। हार=माला। हीरक=हीरा। छहरित=उछलती। मुक्ता=मोती। पोहति=गूँथती है। लोल=चंचल। लहि पवन=हवा लगने से। पैं=पर। इमि=इस प्रकार। विविधमनोरथ=वहुत प्रकार की इच्छाएँ। भावत=प्रिय लगती है। मज्जन=स्नान। त्रिविध-भय=तीन प्रकार का भय दैहिक, दैविक और भौतिक तापों का डर। चन्द्रकांत मनि=एक प्रकार की मणि जो चन्द्रमा को देखकर द्रवित होती है। दवित=बहने वाली। सुधारस=अमृत। ब्रह्मकमंडल-मंडन=ब्रह्मा के कमंडल की शोभा बढ़ाने वाली। भव-खण्डन=जगत के कष्ट को नष्ट करने वाली। सुर सरवस=देवताओं की सर्वस्व। मालति माल=चमेली की माला। ऐरावत=इन्द्र का हाथी। गिरिपति=पर्वतों का स्वामी। हिमनग=हिमालय पर्वत। कंठहारकल=गले की सुन्दर माला। सागर-सुवन-सठ-सहस=सगर के साठ हजार पुत्र। मात्र=केवल। परस=छूना, स्पर्श। उधारण=उद्धार करने वाली। सागर संचारण=समुद्र की ओर ले जाने वाली। ललकि=उमंग करि। भेट्यो=मिली। धाई=दौड़कर मिलना। अमक=गोद। मढ़ी=छोटे-छोटे मन्दिर।

भावार्थ—नवीन और श्वेत जल की धाराएँ हीरों के समान दिखाई दे रही हैं। नए और सफेद जल के बीच-बीच में पानी की जो बूंदें छिटकती हैं वे ही मानों हीरों के बीच में मोती और मणियाँ गूँथी जा रही हैं। हवा के

झोकों से चंचल होकर लहरें एक के ऊपर एक ऐसे गिर रही हैं जैसे मनुष्यों के हृदय में विभिन्न कामनाएँ आती और चली जाती हैं ॥१॥

भावार्थ—स्वर्ग की आकर्षक सीढ़ियों की तरह गंगाजी हृदय को हर्षित करती हैं। दर्शन करने, जल पीने और स्नान करने से तीनों भाँति के (आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक) कष्टों को दूर करती है। (सर्पादि जन्तुओं से दुख होता है आधिभौतिक, जल और अग्नि आदि से आधिदैविक तथा शरीर के मानसिक रोगों को आध्यात्मिक या शारीरिक कहते हैं)। गंगाजी विष्णु भगवान् के चरणों के नाखून रूपी चन्दकान्त मणि से निकली हुई सुधा की धारा है। ब्रह्मा के कमंडल को सुशोभित करने वाली, इस संसार के झझटों को मिटाने वाली और देवताओं की सर्वस्व है ॥२॥

पहली और अन्तिम दो पंक्तियों में अनुप्रास और रूपकालङ्कार है।

भावार्थ—शिवजी के सिर पर गङ्गाजी मालती की माला के समान सुशोभित हैं, यह राजा भागीरथ के तप का फल है। यह ऐरावत रूपी हिमालय पर्वत के गले की सुन्दर माला है और सगर राजा के साठ हजार पुत्रों को छूने मात्र से उबारने वाली है और बहुत-सी धाराओं का रूप लेकर समुद्र की ओर चलती हैं ॥३॥

रूपक और उल्लेख अलंकार है।

भावार्थ—काशी को इस संसार में प्रिय जानकर ही गंगाजी ने बड़े स्नेह से, दौड़कर उससे भेंट की और वे उसकी गोद में इस प्रकार लिपट गई हैं कि उसे स्वप्न में भी नहीं छोड़ेंगी (गंगा के किनारे पर) कहीं-कहीं नए घाट बँधे हुए हैं जो ऊँचे पहाड़ों की भाँति सुशोभित हैं। कहीं पर छतरी टँगी है, तो कहीं मठ बने हैं। यह केवल देखने ही से हृदय को मोह लेते हैं ॥४॥

उपमालंकार, रोला छन्द है।

बढ़ी=बहुत-सी। जोहत=देखते ही। धवल=श्वेत सफेद। धाम=घर। फहरता=उड़ता है। धुजा=झंडा। पताका=झंडियाँ। गहरत=बजते हैं। धौंसा=नगाड़ा। करिसाका=नाम के साथ कोई ऐसा काम करना जिसके कारण बहुत यश मिले, साखा, जौहर। साका=यश। मधुर=मीठी। नीर=जल। कर युगल=दोनों हाथ। बदन=

७

मुख। ससि=चन्द। वेलि=लता। लहलही=हरी भरी। तितही=वही ठहराईरहत=स्थिर हो जाती है, रुक जाती है।

भावार्थ—(काशी में) चारों ओर श्वेत मन्दिर बने हैं, जिनमें झंडे और झंडियां फहरा रहे हैं। कहीं पर घंटे की ध्वनि हो रही है, तो कहीं जोरशोर से नगाड़े बज रहे हैं। कहीं पर मीठे स्वर वाली नौबत बज रही है तो कहीं पर नर और नारी गा रहे हैं। कहीं पर ब्राह्मण लोग वेद पाठ कर रहे हैं तो कहीं तप योगी लोग ध्यान में लगे हुए स्थित हैं।

अनुप्रास अलंकार।

भावार्थ—कहीं-कहीं पर सुन्दर नारियाँ स्नान कर रही हैं और अपने दोनों हाथों से पानी को ऐसे उछाल रही हैं मानो दो कमल मिलकर सुन्दर मोतियों के गुच्छे निकाल रहे हैं। कहीं पर स्त्रियाँ अपने हाथों से मुँह को धो रही हैं, मानो समुद्र के नाते से समुद्र का भाई होने से कमल चन्दमा का कलंक मिटा रहा है (समुद्र के नाते से कमल चन्द्रमा का भाई है क्योंकि समुद्र से चन्दमा की उत्पत्ति और जल ही से कमल पैदा होता है, अतः कहते हैं भाई-भाई का कलंक दूर करे तो उचित ही है) सुन्दरियाँ अपने हाथों से अपना मुख धो रही हैं मानो हाथ रूपी कमल मुख रूपी चन्दमा का कलंक मिटा रहा है ॥६॥

उत्प्रेक्षा अलंकार, रोला छन्द है।

भावार्थ—चन्दमा के जैसे मुँह वाली सुन्दर नारियाँ पानी के अन्दर वैसी ही शोभित होती हैं, जैसे नये फूलों से लदी, कमल की वेल मन को मोह लेती है। दृष्टि जहाँ जाती है, वहीं रुक जाती है। हरिश्चन्द कहते हैं कि गंगाजी की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता है, वह अवर्णनीय है।

उदाहरण अलंकार।

हाथ पसारे=भीख माँगे। ऋण काढ़े=कर्ज ले। हाय हाय मची है=चित्त को व्याकुलता है। आतङ्क से=भय से। सहस्र स्वर्ण मुदा=एक हजार सोने की मोहरें। "वेचि देह········हरिश्चन्द"=शरीर, पत्नी और पुत्र को वेचकर अथवा किसी का दास होकर भी स्वाभिमानी हरिश्चन्द अपने वचन को अवश्य ही पूरा करेगा। "हमारी विद्या········बहक गई"=हाथ में

आई हुई महाविद्याएं इस दुष्ट के वीच में पड़ जाने से हमारे हाथ से चली गईं। मन्द=नीच।

राज भ्रष्ट=राज से अलग। सत्य भ्रष्ट=सत्य से पतित या गिरा हुआ। कौशिक=विश्वामित्र। सूर्यास्त=सूर्य का डूबना। महानुभाव=वड़प्पन।

कृतार्थ=धन्य, कृत कृत्य। लहनदार=महाजन। विक्रय=वेचना। दैवबली है=भाग्य प्रबल है। दुष्कर=कठिन। आर्य=श्रेष्ठ। आर्य पुत्र=प्राचीन काल में स्त्री इसी नाम से अपने पति को सम्बोधित करती थी।

चक्रवर्ती=सम्राट जिसका राज्य चारों दिशाओं में हो। सम्भाषण=वातचीत। उच्छिष्ट=जूठा। उपाध्याय=अध्यापक। वटुक=विद्यार्थी। कोलाहल=शोर, ध्वनि। धारा प्रवाह=बराबर, अखण्ड।

कान न देना=सुनाई न देना। अग्नि होत्र=अग्निकुण्ड। कुल=वंश। विशाल=बड़ा। प्रशस्त-वक्षस्थल=चौड़ी छाती।

वृत्तान्त=हाल, समाचार। ऋण=कर्जा। वृत्ति=आजीविका, व्यवसाय। सर्वंभावः=सब प्रकार से। गति=दशा, हालत। आछत=रहते, जीते जी। विदीर्ण होना=फटना।

आराधना=सेवा। यथासम्भव=शक्ति भर। रुष्ट=नाराज।

वहु श्रुतम्=विद्वान्

श्लोक का भावार्थ—तुम्हारे तप को धिक्कार है, व्रत को धिक्कार है, ज्ञान को धिक्कार है और विद्वत्ता को भी धिक्कार है, क्योंकि तुमने ही हरिश्चन्द को इस दशा को पहुँचा दिया है।

यह अनुष्टुप छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं।

विश्वेदेवा:=विश्वादसपुत्र। इनके नाम ये हैं—

वसु, सत्य, चतुर्दक्षः काल, कामो धृति कुरुः।
पुरुरवा माद्रवश्च विश्वेदेवा प्रकीर्तितः॥

अनुग्रह=कृपा, दया।

प्रतच्छ हरिरूप=प्रत्यक्ष ईश्वर का स्वरूप। जगत=संसार। थल=पृथ्वी। नभ=आकाश। थिर=स्थिर। मरजाद=नियम, मर्यादा। परीच्छन=परीक्षा लेने के लिए।

पद्य का भावार्थ—(धर्म कहता है कि) हम प्रत्यक्ष ईश्वर के रूप ही हैं और यह संसार हमारे ही आधार से चलता है। जल, पृथ्वी और आकाश हमारे ही प्रभाव से स्थिति हैं अपनी मर्यादा को नहीं त्यागते। हम मनुष्य के मित्र हैं और उसके सच्चे हितैषी हैं जिस समय पिता, पुत्र और स्त्री आदि सब संग छोड़ देते हैं, तब हम ही मनुष्य के साथ में रहते हैं। हम सब ही उस सत्य में स्थित हैं जिसके आधार पर संसार जीवित है और हरिश्चन्द के सत्य की परीक्षा करने के लिए ही मैंने यह (छलिया) वेष धारण किया है। निदर्शना अलंकार। छप्पय छन्द है।

राजर्षि=राजाओं में श्रेष्ठ ऋषि। त्रिभुवन=तीनों लोक, स्वर्ग, मर्त्य और पाताल।

अरे·········हैन=अरे। हरजनवा। मोहरों की सन्दूक लाया है न?

का·········करवी=क्या चौधरी। मोहर से क्या करोगे?

तोह से·········पूछ से=तुम्हें इस पूछने से क्या मतबल है?

अस्ताचल·········जिस पर्वत पर सूर्य डूबता है। डोम=भंगी। अमल=राज्य।

मसान=मुर्दाघाट, श्मशान। निवास=रहने का स्थान। बलि=रक्त दान करना। मत्त=मतवाला। व्यसन=काम, मौका।

पद्य का भावार्थ—हम डोमों के श्रेष्ठ चौधरी हैं। (नदी के) दोनों पार हमारा राज्य है। सब श्मशानों पर हमारा साम्राज्य है और हमारा काम कफन माँगना है। हम फूलमती देवी के दास हैं और हम सती की पूजा करते हैं, मुर्दाघाट ही हमारा घर है। धनतेरस और दिवाली की रात को हम बलि देकर काली की पूजा करते हैं। हम तुमको खरीदेंगे और अपने पास से खोल कर मोहर देंगे।

स्वभावोक्ति अलङ्कार, चौपाई छन्द है।

स्वयं दासा: तपस्विन:=तपस्वी लोग तो स्वयं ही दास (नौकर) हैं। साक्षी=गवाही। नियम=शर्त। असन=भोजन। दास=नौकर।

पद्य का भावार्थ—मैं भीख माँग कर भोजन करूंगा और वस्त्रों के स्थान पर कम्बल रखूंगा, घर से दूर रहूँगा और नौकर की तरह स्वामी की आज्ञा का पालन करूंगा।

पूरचो=पूरा हो गया। दर्प=गर्व।

दूसरे दोहे का भावार्थ—कर्ज चुक गया, मेरी बात भी पूर्ण हो गई और द्विज ने शाप भी नहीं दिया। सत्य का पालन करके यदि मैं चाण्डाल भी बन गया तो भी मेरा स्वाभिमान रह गया मैं उस पर अभिमान करता हूँ।

मत्त=पागल।

भावार्थ—इसी समय दक्षिणी मसान पर चले जाओ और वहाँ जाकर सभी से कफन का दान लो। जो तुम्हें टैक्स न दे वह मुर्दा भी न जलाने पावे। चलो अब घाट पर बसो। आज से तुम हमारे नौकर हो गये।

(जवनिका गिरती है)

इति तीसरा अङ्क

चौथा अंक

चिता=लकड़ियों का ढेर जिस पर मुर्दा जलाया जाता है। घनघोर= भयानक डरावना। कफन खसोटी=कफन लेना।

पद्य का भावार्थ—चाण्डल जाति की दासता और मकान घोर श्मशान में है, कफन माँगने का कार्य करना पड़ता है, यह सारे के सारे काम एक से ही हैं। सम अलंकार।

विधाता=ब्रह्मा। अनाथ=अ=नाथ, निराश्रय। नातेदार=सम्बन्धी। मोह=मूर्च्छा। गूँथना=गुहना।

भावार्थ—अपना शरीर, स्त्री और पुत्र को बेच कर भी तथा नौकर

बनकर भी स्वाभिमानी हरिश्चन्द ने अपनी प्रतिज्ञा को सच्चा प्रमाणित कर के ही छोड़ा।

असमय=वेवक्त, कुसमय। पुष्पवृष्टि=फूलों की वर्षा। संस्कार= दाह, रस्म। निर्भयमुद्रा=निडर होकर। मुद्रा=चेहरा। बाए=खोलकर। डैना=पंखा। कर्णकटु=जो सुनने में बुरा लगे। एक के शब्द की लाग से= एक को चिल्लाता हुआ सुनकर। चिराइन=मुर्दे के जलने की दुर्गन्ध। वीभत्स=घृणा उत्पन्न करने वाला। ज्वाला=अग्नि। माटी=लाश, शव। जनावरां=जानवर। महोच्छव=महोत्सव।

भावार्थ—विदेश में मरना अच्छा है जहाँ अपना सगा सम्बन्धी कोई नहीं हो क्योंकि (ऐसे देश में) शव को जानवर खा जाते हैं तथा वे बड़ा भारी उत्सव भी मानते हैं। इसमें अनुज्ञालंकार और यह छन्द दोहा है।

काग=कौआ। उचारत=निकालता है। स्वान=कुत्ता।

तुच=चमड़ा। मोह=आनन्द।

भावार्थ—(परदेश में मरने पर) कौआ दोनों नेत्रों को निकाल लेता है और उसको खाता है। गीदड़ जीभ खींच लेता है और खाकर बड़ा प्रसन्न होता है। जांघ को खोद-खोद कर गिद्ध माँस खाता है और कुत्ता अँगुलियों को काट-काट कर खाने का विचार करता है। बहुत-सी चीलें माँस नोंच कर ले जाती हैं और इस प्रकार. सभी का हृदय हर्षित होता है मानों किसी यजमान ने आज भिखारियों को भोजन प्रदान किया हो ॥१॥

उत्प्रेक्षा अलंकार छप्पय छन्द है।

निस्सार=व्यर्थ, किसी काम न आने वाली।

उदर=पेट। परसत=छूना। तुच=त्वचा; खाल। कोय=कोई। लाला=लार। बसा=चरबी। वासना=विषय की इच्छा।

भावार्थ—मुख भी वही है। पेट भी वही है, हाथ और पैर भी वही हैं। परन्तु आज कैसा परिवर्तन हो गया है कि कोई लाश को छूता तक भी नहीं है। हाड़, मांस, लार, रक्त, चमड़ा आदि सब के सब मनुष्य के मरने पर दुर्गन्धमय और अलग-अलग हो जाते हैं। लाश की ऐसी अवस्था को देखकर

कायर डरते हैं तथा पंडित लज्जित होते हैं। हा ! संसार के विषय-वासना सभी व्यर्थ हैं।

बखान्यो=वर्णन किया जाता था। भुज=बाँह। गर=गला। जेहि चन्द बखान्यो=जिसको चन्दमा के समकक्ष कहते रहते थे। विक्रमपारें=पराक्रम दिखाते हैं। रसना=जीभ।

भावार्थ—यह वही मुख है जिसे चन्द्र जैसा पुकारा जाता था, यह वही अङ्ग है जिनको अतिप्रिय माना जाता था और ये वही बाँहें हैं जो प्रिय के गले में डाली जाया करती थीं और यह वही बाँहें हैं जिन्होंने युद्ध में अपने तेज का प्रकाश किया था ॥३॥

वंदना=सेवा करते थे। रसना=जीभ। जुड़ानी=सन्तुष्ट हुई।

भावार्थ—ये वही चरण हैं जिनकी सेवा नौकर किया करते थे और यह वही छवि है जिसे देखकर नेत्रों को प्रसन्नता होती थी, यह वही जीभ है जिसकी मधुर वाणी अमृत जैसी लगती थी और जिस वाणी को सुनकर नारी का हृदय ठण्डा हो जाया करता था ॥४॥

वचटेका=बात की आन, प्रतिज्ञा रखना।

भावार्थ—यह हृदय वही है जहाँ भिन्न-भिन्न भाव बसते थे; मस्तक भी वही है कि जिसमें अपनी प्रतिज्ञा रखने की आन बसती थी, वे सब सुन्दर अङ्ग प्रत्यङ्ग प्राणों के बिना पृथ्वी पर लिटा दिये गए हैं। अर्थात् पृथ्वी पर पड़े हुए हैं ॥५॥

दाहत=जलाते हैं।

भावार्थ—वह सुन्दरता कहाँ चली गई जिसको देखकर हृदय मतवाला हो जाता था, जिसे लोग अपने जीवन से भी अधिक प्यार करते थे; उसी (प्राणी को) आज जला रहे हैं ॥६॥

हेरी=देखी। कपाल-क्रिया=मुर्दे को बाँस से मार कर उसका मस्तक फोड़ना। केरी=उनकी।

भावार्थ—जिन्होंने अपने सर पर कभी फूलों का बोझा भी नहीं उठाया, उनके वक्षस्थल पर आज लकड़ियों का ढेर लाद दिया गया है। जिस आदमी के सिर का दर्द भी दूसरों को व्याकुल कर देता था आज उसी का मस्तक फोड़कर उसे जला रहे हैं।

छिनहू=क्षण भर भी । न्यारे=पृथक् । सिधारे=चले गये । दृगकोर=दृष्टिक आँखों का कोया ।

भावार्थ—जो पलभर के लिए भी पृथक् नहीं होते थे, वे अपने भाई बन्धुओं को योंही छोड़ कर चले गए । जिन नेत्रों को राजा लोग देखा करते थे, उन्हीं को कौआ आज अपना भोजन बना रहा है । अर्थात् जिन नेत्रों के इंगति पर राज-साम्राज्य चलता था उसे कौआ नोंच-नोंच कर खा रहा है ।

भुवन समाए=विश्व में भी न समाय ।

भावार्थ—पृथ्वी भर जिनके भुजबल से काँपता था वे आज अपने मुख को कफन से छिपाए हुए पड़े हैं । काल के सामने राजा और प्रजा में कोई भेद नहीं, वह सबको एक ही गिनता है ॥९॥

सुभग=सुन्दर । कुरूप=बदसूरत । साने=संयुक्त । बिकाने=बिक गये ।

भावार्थ—सुन्दर और असुन्दर, अमृत से भरे और विष से भरे, सबके सब एक ही भाव बिक गये, पुरु और दधीचि (जैसे प्रतापी) भी शेष नहीं रह गये अब तो केवल उनका नाम-मात्र ही बाकी रह गया है ।

अभिषेक—मन्त्रों के द्वारा नियमानुसार जल छिड़कना और तिलक करना ।

मनोरथ=अभिलाषा ।

कात्यायनी=देवी, चण्डी । बीभत्स उपचार=घृणा उत्पन्न करने वाली पूजा ।

लोलक=घंटा बजाने का लट्टू । अभिषेक=पूजा । नली=घुटने के नीचे का भाग । बलि=भोजन । उतारा=जब कोई आदमी बीमार पड़ता है तो कुछ लोग दही सिन्दूर आदि को उसके चारों ओर फिरा कर चौराहे पर रख देते हैं । इसी को उतारा कहते हैं । इसे टोटका भी पुकारते हैं ।

भगवति·········नमस्ते=हे भगवति ! हे चण्डी !! प्रेत स्वरूपा ! प्रेत के ऊपर चढ़ने वाली ! प्रेतों से सुशोभित ! मुर्दों की हड्डियों के कारण भयंकर रूप वाली । मुर्दों का भोजन करने वाली, हे भैरवी । तुम्हें नमस्कार है ।

साधु=धन्य। पदमिनी वल्लभ=सूर्य। लौकिक वैदिक=सांसारिक तथा धार्मिक। प्रवर्त्तक=संचालक। प्रचंड=तीव्र। गगनांगन=आकाश रूपी आँगन। काल सर्प=काल रूपी साँप। शिखामणि=सिर की मणि। साँझ=संध्या। कटि=कमर। उच्चारण=मारण मंत्र।

मिस=बहाना। कापालिक=अघोरी, वाममार्गी। नवबिम्ब=उदय के समय का चन्द्र।

भावार्थ—(इस पद्य में काल और कापालिक दोनों का वर्णन किया गया है) संध्या रूपी लाल कपड़े से अपनी कमर कसे हुए सूर्य रूपी आदमी की खोपड़ी हाथ में लिए हुए और पक्षियों के अनेक तरह के शब्दों के द्वारा उच्चाटन मन्त्र बोलता हुआ, नवीन चन्द्र रूपी शराब से भरी हुई खोपड़ी को लिए हुए और जीवरूपी जानवर को बलिदान करता हुआ मतवाला होकर कापालिक के रूप में काल नाच रहा है ॥१॥

रूपक अलंकार मत्तगयन्द सवैया।

घने=बहुत। तरु=पेड़। विहंगम=पक्षी। लोगाई=औरत। कपाल=खोपड़ी। निसाकर=चन्द्रमा।

भावार्थ—(इस पद्य में संध्या और श्मशान दोनों का वर्णन किया गया है) [अस्त होता हुआ] सूर्य ही मानो धुएँ से हीन चिता है जो अन्त में पानी में फेंक दी जाती है। घने वृक्षों पर बैठे हुए पक्षी जो कोलाहल कर रहे हैं, वही मानो श्मशान में स्त्री और पुरुष रो रहे हैं, अन्धकार के धुएँ के समान है, खोपड़ी ही मानो चन्दमा है और हड्डियाँ ही मानो तार हैं, लहू के कारण ही ललाई है। निशाचरों की प्रसन्नता के लिए ही काल देवता ने मानो श्मशान के समान संध्या का निर्माण किया है।

इसमें प्रतदुन्ना अलंकार है और यह मत्तमयंद सवैया है।

प्रवाह=बहाव। आगमन=आना। सन्नाटा=चुप्पी। रुरुआ=एक प्रकार का पक्षी। रटत=बोलता है। उलूक=उल्लू। अन्धकार बस=अंधेरे के कारण। रव=शब्द। हड़-गिल्ल=बड़ी जाति का गिद्ध। भयद=भयानक। खर=तेज। तुमुल=घोर, बड़ा।

भावार्थ—रुरुआ चारों ओर शोर कर रहा है। जिसे सुन-सुन कर नर

और नारी डर जाते हैं। अपने दोनों पंखों को फटफटा कर उल्लू भी बोल रहा है। अंधेरा होने से चील और कौए चिल्लाते हुए गिरते हैं। इस भीषण रव को सुन-सुन कर गिद्ध, गरुड़ और हड़गिल्ले भागे जा रहे हैं। नदी गरज रही है। सियार चिल्ला रहे हैं और कुत्ते का भूकना मन को भयभीत कर देता है। इसके साथ मेंढ़क और झींगुरों का रोना जब मिल जाता है, तब भीषण शब्द छा जाता है।

अनुप्रास अलंकार छप्पय छन्द।

योग्य=ठीक। पंशाखा=पाँच बत्तियों की मशाल।

पद्यों का अर्थ सरल है अतः छोड़ दिया गया है।

क्रीड़ा-कुतूहल=खेल-तमाशा। विकराल=भयंकर। मूर्तिमान होकर=देह धर कर, प्रत्यक्ष होकर। परस्पर=आपस में। भूतनाथ=शंकर।

उसिसवाँ=सिरहाना, तकिया।

पद्य का भावार्थ—चाहे टूटा फूटा और टपकने वाला ही घर क्यों न हो परन्तु यदि अपने प्यारे की बाँह का तकिया मिल जाय तो यह दुःख नहीं है वरन् सुख है।

अनुप्रास अलंकार, बरवै छन्द, रहीम कवि इस छन्द के जनक हैं।

घोघी=लपेटा हुआ कम्बल। स्नेह=प्रेम।

चपला=बिजली। चहुँधा=चारों ओर। चिनगी=अग्नि की चिनगारियाँ। चिलक=धीरे-धीरे उठने वाली चमक। पटबीजना=जुगनू। हेतु=सम्बन्धी, हड्डी। बगमाल=बगुलों की पंक्ति। वीरवधू=वीरबहूटी।

भावार्थ—(इस पद्य में वर्षा ऋतु और श्मशान का वर्णन एक साथ दिया गया है) (बादल में) जो बिजली की चमक है, वही मानो चारों ओर से जलती चिता है, और मानो जुगनू ही उस चिता में से निकलती हुई चिनगारियाँ हैं। बगुला की पंक्ति हड्डी जैसी दीख पड़ रही है अथवा बगुलों की पंक्तियाँ ही मानो नातेदार हैं, और काले-काले बादल श्मशान की काली भूमि के समान हैं, वीरबहूटियाँ मानो पृथ्वी पर गिरे हुए रक्त की बूँदे हैं। हरिश्चन्द कवि कहते हैं कि वर्षा की धारा ही मानो दुखियों के नेत्रों से बहती हुई धारा है, मेढ़कों का शोर ही मानो दुःखी भारत वालों के रोने का शब्द है।

वियोग से दुःखी और मृत लोगों को जलाने के लिए ही पापी वर्षाकाल श्मशान के रूप में दिखाई दे रहा है।

उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकार मनहरण कवित्त।

सरिस=समान। आयुस=आज्ञा। प्रतिभट=शत्रु।

भावार्थ—जो कोई मेरी आज्ञा को नहीं मानेगा, वह चाहे इन्द्र और काल के समान ही बली क्यों नहीं हो, मेरी बलवान् भुजायें उसके लिए शत्रु के समान होंगी अर्थात् मैं आज्ञा को तोड़ने वाले को नष्ट कर दूंगा। उपमा अलंकार।

अस्थि=हड्डी। आभूषण=जेवर। मसान जगाना=मन्त्र को सिद्ध करना। कपाल=खोपड़ी।

भावार्थ—अपने सारे शरीर में चिता की भस्म लगाए, हड्डी से बने हुए भाँति-भाँति के गहने पहने हुए श्मशान की खोपड़ी से जो उसके हाथ में थी मसान को जगाता हुआ शंकर समान यह कौन चला आ रहा है ॥३॥

उपमा अलंकार, चौपाई छन्द।

वृत्ति=जीविका। अयाचित=बिना माँगी हुई। आत्म रति=ईश्वर में प्रेम। विहाग=प्रेम से दूर।

भावार्थ—हम किसी से कुछ भी माँगते नहीं हैं, जो भी कुछ हमें मिल जाता है बस उसी पर निर्वाह करते रहते हैं। हम ईश्वर से प्रेम करते हैं। हम संसार के समस्त आनन्दों को त्याग कर केवल उसी आनन्द को रखते हैं जो वैराग्य से प्राप्त होता है। इस प्रकार हम एक श्मशान से दूसरे श्मशान पर डोलते रहते हैं ॥१॥ वीप्सा अलंकार।

दूसरे पद्य का अर्थ तीसरे अंक में दिया जा चुका है। यही पद दो बार समस्त पुस्तक में दिया गया है।

सोग=दुःख। वरु=चाहे। पै=पर। टारत=टालना। वच=वचन।

भावार्थ—संसार में जो सच्चे लोग हैं वे बहुत से दुःखों को सहते हैं, पर मर कर और मिट कर भी अपनी सत्य प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ते।

चाहे सूर्य पश्चिम से उदय होने लगे, चाहे विन्ध्याचल पर्वत जल में तैरने लगे परन्तु सत्यवादी लोग कभी भी अपनी बात से पीछे नहीं फिरते ॥३॥

अत्युक्ति अलंकार।

अर्थी=माँगने वाला, भिक्षुक। नाट्य=अभिनय। पूर्ण=पूरा। कल्याण=मंगल।

"अंजन········यह कलि" मुझे इस समय आठों सिद्धियाँ प्राप्त हैं। अंजन, गुटिका: पादुका, धातु, बैताल, वज्र, रसायन, जोगिनी यही आठों सिद्धियाँ हैं।

निवारण=शान्ति। आकर=खानि। निषेध=मना। पुरश्चरण= प्रयोग। प्रचार=फैलाव। आज्ञा=हुक्म।

भावार्थ—कल्याण का दरवाजा आज खुल गया जोग और मंत्र आज सिद्ध हो गये। आठों सिद्धियाँ और नवों प्रकार की निधियाँ अपने-अपने मन के अनुसार काम करें।

त्रिलोक विजयनि=तीनों लोकों को जीतने वाली।

हमारा ग्रहण कीजिए=हमें अपनाइए, स्वीकार कीजिये।

वशवर्तिनी=अधीन। वैताल=एक प्रकार के सिद्ध। रसेन्द्र=पारा। मेरु-शिखर=पहाड़ों की चोटी। खोई=छोड़ कर।

भावार्थ—इसी के प्रभाव से मनुष्य, देवताओं की भाँति अमर हो जाते हैं और योगी लोग, पहाड़ों की चोटियों पर भी, निर्भय होकर आनन्द से घूमते रहते हैं।

विरुद्ध=खिलाफ, प्रतिपक्ष। स्वर्ण=सोना। दास्य=गुलामी। स्वत्व-मात्र=सब अधिकार। महानुभावता=उदारता, बड़प्पन। रसेन्दु=पारा।

"चले··········ललचाय" चाहे प्रलय के पानी और हवा के झोकों से सुमेरु पर्वत डोलने लगे परन्तु वीरों के मन लोभ के कारण कभी पीछे नहीं हटते।

अत्युक्ति अलङ्कार।

रावल=छोटे राजा। ब्राह्म मुहूर्त=सूर्योदय के ठीक पहले का समय, उषाकाल, जब लोग पूजा करते हैं। नूपुर=बाजा विशेष।

अनुग्रह=कृपा। सद्यः=तत्काल। तृण=तिनका।

शिथिल=कमजोर, ढीला। तक्षक=भयंकर विषैला सांप। अरुण=सूर्य। चित-चीतो भयो=मन चाहा हुआ। चितौति=देखती है। चायसों=प्रसन्नता से। कलाधर=चन्द्रमा। प्राची=पूर्व। जमजाँची=यम ने माँग ली अर्थात् नष्ट हो गई।

भावार्थ—उस चकई की मन चाही हुई बात अब तो हो गई इसी से वह चारों ओर देख कर आनन्द से नाचती है। चन्द्रमा की कलाएँ अब पीली पड़ रही हैं और रात की प्रभा मानो यम ने भिक्षा में माँग ली हैं अर्थात् नष्ट हो गई हैं। देवकवि कहते हैं कि बैरी पक्षीगण बोलने लगे हैं और संयोगियों की सम्पत्ति कच्ची हो गई है अर्थात् नष्ट हो गई है। (पूर्व दिशा में जो लालिमा है) मानो पूर्व दिशा रूपी राक्षसी ने किसी वियोगिन के रक्त को पी लिया है, उसी के कारण उसका मुँह लाल हो गया है।

इसमें रूपक, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास आदि कई अलंकार हैं और यह मत्तगयंद, सवैया है। इसमें प्रातःकाल का चित्रण किया गया है। यह पद महाकवि देव का बनाया हुआ है।

सहसन=हजारों। परिचारिक=नौकरानियाँ। राखत हाथहि हाथ=हाथों पर रखते थे अर्थात् सदैव सेवा में खड़े रहते थे।

भावार्थ—जिसे सहस्रों नौकरानियाँ हाथों हाथ रखती थीं, वही तुम (राजकुमार) नौकरों के लड़कों के साथ मिट्टी में लोटते फिर रहे होगे ॥ १ ॥

जिसकी आज्ञा को शिर झुका कर सब राजा लोग तत्काल ही पालन करते उसी को ब्रह्मचारी आज्ञा देता होगा। हा विधाता बड़ा कठोर है ॥ २ ॥

विना शरीर बेचे, बिना शरीर के समर्पण के तथा सांसारिक ज्ञान और विवेक पाये बिना ही, तुम भाग्य रूपी सर्प से काटे गये और इस प्रकार भिन्न-भिन्न कष्टों को भोग रहे हो ॥३॥

अपशकुन=बुरा लक्षण। पुरखा=पूर्व पुरुष, जो वंश में पहले हो गये हैं। अनुशासन=आदेश।

कल्याण=भला। वीभत्स कर्म=भीषण काम, बुरा काम। निष्करुण=निर्दय।

गुनी=मन्त्र तन्त्र से विष उतारने वाला। वेला=समय। होम=यज्ञ, हवन। आसरे=सहारे, प्रतीक्षायें। बोलता हुआ सुग्गा=पुत्र।

शङ्का=सन्देह। आयुष=उम्र! वज्र कहाँ से टूट पड़ा=बला कहाँ से आ गई। अवलम्बन=सहारा। मन्द भाग्य=अभागा। दारुण=कठिन।

आलवाल=थाला। प्रवास=कोमल पत्ता, कोंपल।

हरिश्चन्द्र-हृदयानन्द=हरिश्चन्द्र के हृदय को आनन्द देने वाले। शैव्याव-लम्ब=शैव्या के सहारे। मातृ-पितृ-विपत्ति सहचर=माता और पिता के दुःख के साथी। वज्र हृदय=कठोर हृदय। व्यर्थ प्रलाप=बिना मतबल के बकना।

अनर्थ=उपद्रव। इच्छाकृत=जो काम किया जाय करने की इच्छा की जाय। सर्वान्तर्यामी=सबके हृदय की बात को जानने वाले।

निपूती=पुत्रहीना। "तनहिं बेच·········दुख नाहीं"

भावार्थ—तुमने अपने शरीर को बेच डाला है और अब तुम दासी हो गई हो। इस पर भी बिना स्वामी की आज्ञा लिए मरती हो यह अधर्म है ऐसा मत करो। अपने मन में अच्छी तरह जान लो कि पराधीनता में पड़ कर सपने में भी सुख नहीं मिलता है।

श्मशानपति=मसान के मालिक। महाभागे=अच्छे भाग्य वाली।

श्लोक का भावार्थ—राजा हरिश्चन्द्र! तुम्हारे धीरज, सत्य, बल और तुम्हारे दान को धन्य है। तुम्हारे सभी काम अलौकिक हुए हैं।

कुसमय=आपत्ति में। स्तुति=प्रशंसा। असत्य=झूठा। पाखण्ड=दिखावा। त्रिकाल में=भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में।

प्रायश्चित=पाप होना और पाप के कारण के छूटने के हेतु यज्ञादि करना। आकृति=आकार। सिल-पत्थर। क्रिया=दाह, अन्तिम संस्कार।

परमावधि=अन्तिम सीमा। त्रैलोक्य=तीनों लोक।

सच्चिदानन्द=सत्+चित्+आनन्द=सत्य है+चैतन्य है+प्रसन्न है=ईश्वर। गद्‌गद्=रुके हुए। पुष्प-वृष्टि=फूलों की वर्षा। मुखार-बिन्दु=मुख रूपी कमल। कीर्ति=यश, मान।

अस्तित्व=स्थिति, सत्ता, विद्यमानता। पर्यन्त=तक। दीर्घायु=बहुत दिन तक जीवित रहना। अनुसरण करे=अनुकूल चले।

भैरवी-यातना=मरने के बाद का भयङ्कर दुःख। मनुष्यों के मरने पर उनकी आत्मा को भैरवजी शुद्धि करने के विचार से उन्हें बहुत प्रकार से कष्ट देते हैं। इसी को नरक सहना भी कहते हैं।

एवमस्तु=ऐसा ही हो। परमधाम=स्वर्ग। भरतवाक्य=नाटक के अन्त में दिया जाने वाला आर्शीर्वाद।

खल=दुष्ट। गगन=दल। मत=नहीं। हरिपदरति=भगवान् के चरणों में स्नेह। उपधर्म=धर्म का अन्य विभाग। सत्व=अधिकार। कर—टैक्स। बुध=पण्डित। मत्सर=ईर्ष्या। ग्राम कविता=गँवारू कविता। अमृत-वाणी=मधुर कविता।

भावार्थ—दुष्ट मनुष्य मनुष्यों की दुष्टता से सज्जन दुःखी न हों, सभी लोगों का प्रेम ईश्वर के चरणों में बना रहे, मतमतान्तर तथा अधर्म दूर हो जायँ। भारत अपने अधिकारों को प्राप्त करे। टैक्स का दुःख नष्ट हो जाय। विद्वान लोग जलन रखना त्याग दें, स्त्रियाँ (विद्या और अधिकार में) पुरुषों के ही समान हो जायँ। सब संसार को सुख प्राप्त हो तथा जनता गँवारू कविता को त्याग दे सुन्दर कवियों की अमृत भरी कविता का रसास्वादन करें।

अनुप्रास अलंकार हरिगीतका छन्द है।